आर्यपथ के नियम—

पथ प्राचीन वैदिक विचारधारा का प्रचारक और आर्य ऋषियों द्वारा प्रचारित संस्कृति के पुनरु- पक्षपाती मासिक पत्र है।

(२) यह पत्र प्रति मास १५ वीं तिथि को प्रकाशित होता है। यदि दिनांक २५ तक न पहुँचे तो तत्काल सूचना देने पर दूसरी प्रति भेजी जा सकती है।

(३) वार्षिक मूल्य ३) रु० धनादेश [मनी आर्डर] द्वारा अग्रिम भेजना चाहिये। वी० पी० मंगवाने में ग्राहक को ५० न० पै० अधिक देने पड़ते हैं।

(४) आर्यपथ का नया वर्ष मार्च [फाल्गुन] से होता है। वर्ष का प्रथम अंक विशेषांक होता है।

(५) आर्यपथ के ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

(६) प्रकाशनार्थ लेख और रचनायें सम्पादक आर्यपथ, आर्यसमाज, रातानाडा, जोधपुर के पते से आने चाहिये। लेख सरल, संक्षिप्त, सारगर्भित और मौलिक हों। सैद्धान्तिक और आर्यसमाज की जीवन्त समस्याओं के सम्बन्ध में आलोचनात्मक और विवेचनात्मक लेखों को प्राथमिकता दी जायेगी लेख स्पष्ट और शुद्ध हों, तथा कागज के एक ओर लिखे हों। उनका प्रकाशित करना या न करना अथवा संशोधित करना सम्पादक के आधीन होगा। अन्यत्र प्रकाशित रचनाओं को स्थान नहीं दिया जायेगा। डाक व्यय प्राप्त होने पर अस्वीकृत रचनायें लौटाई जा सकेंगी।

(७) विज्ञापन के लिये अग्रिम धन का आना आवश्यक है। सम्पूर्ण पृष्ठ के १०) रु० और आधे पृष्ठ के ५) रु०। अश्लील और गर्हित रुचि के विज्ञापन नहीं छापे जायेंगे।

(८) पत्र व्यवहार के समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

(९) पत्र की सामग्री और उसके बाह्य प्रसाधन के सम्बन्ध में पाठकों से सुझाव भेजने की प्रार्थना की जाती है।

(१०) पत्र का नमूना निःशुल्क भेजा जाता है।



श्री विद्यानन्द विदेह और आर्यसमाज मे अनुशासन की समस्या

हमारे पाठकों को यह विदित ही होगा कि सार्वदेशिक सभा ने श्री विद्यानन्द विदेह के लिये आर्यसमाज की वेदी बंद करदी है। श्री विद्यानन्द विदेह ने अभी हाल ही में एक विस्तृत वक्तव्य 'अपनों से अपनी बात' शीर्षक प्रकाशित करा कर समस्त आर्यसमाजों को भेजा है। इसका अधिकृत उत्तर जहाँ तक हमें ज्ञात है अभी तक सार्वदेशिक सभा द्वारा नहीं दिया गया, यद्यपि 'सार्वदेशिक' की एक सम्पादकीय टिप्पणी में विदेह जी के उक्त वक्तव्य की आलोचना की गई है। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब कि हमारी शिरोमणि सभा के पदाधिकारी इस वक्तव्य पर अपना निर्णयात्मक मत व्यक्त करेंगे। अस्तु।

विदेह जी के इस वक्तव्य से कई बातें सामने आती हैं। उन्होंने कुछ व्यक्तियों पर यह आरोप लगाया है कि वे उनकी प्रगति और बढती हुई लोकप्रियता को सहन नहीं कर सके, उन्होंने विदेह जी के विरूद्ध वातावरण तैयार किया और ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी, जिसके परिणाम स्वरूप सार्वदेशिक सभा को उनके लिये आर्यसमाज की वेदी बंद करनी पड़ी। विदेह जी के इस कथन में कितनी सत्यता है, हम नहीं कह सकते। परन्तु यह भी निश्चित है कि विदेह जी स्वयं पथ भ्रष्ट हो रहे थे अथवा हो गये थे। धर्मार्य सभा के समक्ष अपनी भूलों को स्वीकार करना यह सिद्ध करता है कि उनके विरुद्ध लगाये गये आरोपों में पर्याप्त सत्यता थी। उन्होंने सार्वदेशिक सभा को यह विश्वास भी दिलाया कि वे अपने ग्रन्थों में आवश्यक संशोधन कर देंगे और जब तक यह नहीं होगा, उनके ग्रन्थों का वितरण बंद रक्खा जायगा।

विदेहजी ने अपने वचन का पालन नहीं किया। धर्मार्यसभा के समक्ष अपनी भूलों को स्वीकार करने के तुरन्त बाद ही वे अफ्रीका चले गये और वहाँ उन्होंने वेद भाष्य के नाम पर पर्याप्त धन संग्रह किया। जब सार्वदेशिक सभा ने उनके लिये समाज की वेदी बंद कर दी तब तो उनमें प्रतिशोधाग्नि तीव्रता से धधक उठी और उनका यथार्थ स्वरूप लोगों के समक्ष आ गया। विदेहजी का अहं बड़ा प्रबल है। वे अपने मुंह से ऋषि दयानन्द का चाहे कितना ही गुणगान क्यों न करें, अपने वेद व्याख्या ग्रन्थों में ऋषि का उल्लेख न करना उनकी नकली ऋषि भक्ति का पर्दाफाश कर देता है और आर्यसमाज के प्रवर्तक के प्रति उनकी घोर कृतघ्नता का सूचक है। आर्य समाज से बहिष्कृत होने के पश्चात् विदेह जी ने अपने मासिक पत्र 'सविता' में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में आर्यसमाज के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा, उससे आर्यसमाज के विरोधियों के ही हाथ मजबूत हो सकते हैं।

इधर अपना वक्तव्य प्रकाशित कराने के पश्चात् उनका रुख कुछ बदला हुआ अवश्य प्रतीत होता है।

हम यह तो नहीं कह सकते कि इस दुर्भाग्य पूर्ण परिस्थिति का अन्त कब और किस प्रकार होगा क्योंकि हमें विदेहजी और आर्यसमाज में कुछ मौलिक मतभेद दृष्टिगोचर हो रहा है, परन्तु यहाँ प्रसंगवश हम आर्यसमाज में अनुशासन की समस्या पर कुछ महत्व पूर्ण बातें लिख देना भी आवश्यक समझते है।

विदेहजी के आर्यसमाज से बहिष्कृत कर दिये जाने के पश्चात् भी आर्यसमाजों ने उन्हें अपने यहाँ आमंत्रित किया, उनकी कथायें करवाई और उनको सम्मान दिया। उनके वेदसंस्थान द्वारा संचालित साधना शिविरों में आर्यसमाज के चोटी के नेताओं और विद्वानों ने भाग लिया और सहयोग दिया। फिर इनके लिये आर्यसमाज की वेदी बंद कर देने का क्या अर्थ है? सार्वदेशिक सभा की नाक के नीचे ही दिल्ली की समाजें विदेहजी को बुलाती हैं और उनका प्रचार करवाती हैं। फिर अनुशासनात्मक कार्यवाही कहाँ गई? क्या सार्वदेशिक सभा इन तथ्यों से अनभिज्ञ है? यदि वह जानती है कि उसके निर्णय के उपरान्त भी उसकी आज्ञा की अवहेलना हो रही है तो ऐसा करने वाली आर्यसमाजों पर सभा ने अनुशासनात्मक कार्यवाही क्यों नही की? सभा निश्चयही अनुशासन का पालन कवारने में असफल रही।

स्पष्ट बात तो यह है कि आज आर्यसमाज में अनुशासन नाम की कोई वस्तु शेष ही नही रह गई है। और अनुशासन का पालन हो भी कैसे? समाज का संचालन ऐसे लोगों के हाथों में चला गया है जो स्वयं सिद्धान्त हीन, अवसरवादी अर्थ के दास और समाज के गौरव और परम्पराओं से अनभिज्ञ हैं। नीतिकार के शब्दों में अपूज्यों की पूजा और पूज्यों का तिरस्कार जहाँ होगा वहाँ दुर्भिक्ष, मरण और भय के अतिरिक्त और क्या फल हो सकता है? आर्यसमाज भी आज श्रेष्ठ विद्वानों और कर्मठ सभासदों के अभाव में दुर्भिक्षग्रस्त है, उसके संगठनात्मक विघटन की कल्पना भी की जा सकती है और वह अन्यान्य शक्तियों से भयाक्रान्त तो निश्चय ही है।

जब अनुशासन का पालन ही नहो तो व्यर्थ के घटाटोप से क्या लाभ? सहयोगी 'सार्वदेशिक' ने अपनी टिप्पणी में लिखा कि विदेहजी आज भी बिजली से अन्त्येष्टिकराने में विश्वास रखते हैं। फिर उन्हें आर्यसमाज में कैसे लिया जा सकता है? हमारा निवेदन है कि ऐसी छोटी छोटी बातों में मतभेद का विचार किया जाय तब तो आर्यसमाज के किन्हीं दो विद्वानों की परस्पर मेल की पटरी नहीं बैठेगी। उस परिस्थिति में सार्वदेशिक सभा किस किस विद्वान के लिये आर्यसमाज की वेदी बंद करेगी? सत्य तो यह है कि या तो कोई ऐसी कार्यवाही की ही न जाय जिससे आर्यसमाज की शक्ति का ह्रास हो और हम अपने मित्रों और शुभ चिन्तकों को अपना विरोधी बना बैठे। यदि अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी ही पड़े तो उसका दृढ़ता से पालन किया जाय, और उसमें शिथिलता दिखाने वालों को कड़ा दण्ड दिया जाय।

आर्यसमाज ने अपने 'विगत जीवन काल में ऐसे अनेक विद्वानों को खोया है जिन्हें तनिक सा मतभेद हो जाने के कारण ही हमने पृथक कर दिया। माना कि इटावा वाले भीमसेन शर्मा और अखिलानन्द स्वार्थवश आर्यसमाज के विरोधी बने परन्तु क्या पं० विश्वबंधु शास्त्री जैसे त्यागी और मनस्वी विद्वानों को खोकर हमने अपनी हानि नहीं की? यह सत्य है कि सैद्धान्तिक बातों में समझौता नहीं किया जा सकता, परन्तु क्या आज भी हम ऐसे विद्वानों की प्रतिष्ठा नहीं करते और उन्हें प्रश्रय नहीं देते जिनके विचार स्पष्ट ही आर्यसमाज के सैद्धान्तिक दृष्टि कोण से

भिन्न हैं। एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा। बनारस संस्कृत कालेज के भूतपूर्व प्रिन्सिपल डा० मंगल देव शास्त्री आर्यसमाजस्थ गुरूकुलों के उत्सवों पर आयोजित होने वाले सम्मेलनों के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहते हैं परन्तु जिन पाठकों ने उनके द्वारा लिखी पुस्तक ' भारतीय संस्कृति का विकास: वैदिक धारा ' पढ़ी है वे जानते हैं कि वेदों के विषय में शास्त्रीजी के कैसे विचार हैं और आर्यसमाज के दृष्टिकोण से उनका कितना मतभेद है। केवल मतभेद की ही बात नहीं, डा० मंगलदेवजी के विचारानुसार तो आर्यसमाज का वेद के प्रति समग्र दृष्टिकोण ही पूर्वाग्रह युक्त, साम्प्रदायिक और रूढ़िग्रस्त हैं। ऐसे विचार रखने वाला व्यक्ति भी यदि हमारे द्वारा सम्मान का पात्र हो सकता है तो क्या विदेहजी के विषय में हम अपने निर्णय पर पुनः विचार नही कर सकते।

हमारे कथन का यह अभिप्राय नही कि सार्वदेशिक सभा विदेहजी के अपराधों के प्रति उपेक्षा दिखलाये और उनकी अहंवादिता तथा उनकी सिद्धान्त विरुद्ध मान्यताओं और क्रियाओं को क्षमा कर दे। निवेदन इतना ही है कि हम यह देखें कि हम जिस अनुशासनात्मक कार्यवाही की घोषणा करते हैं उसका सम्पूर्ण रीत्या पालन भी होता है या नही और किसी साधारण मतभेद की आड में हम किसी अच्छे व्यक्ति को केवल खो ही नहीं रहे हैं अपितु उसे अपना विरोधी तो नहीं बना रहे हैं ?

टिप्पणियाँ –

दलाई लामा की भोजन सूची –

तिब्बतीय बौद्धों के धर्म गुरू और ' जीवित बुद्ध' के प्रतिष्ठा पूर्ण पद पर आसीन दलाई लामा की भोजन सूची जब हमने समाचार पत्रों में पढ़ी, तो उससे आश्चर्य तो कुछ विशेष नही हुआ क्योंकि यह तो एक सर्वविदत बात है कि आज के बौद्ध धर्मावलम्बी वे चाहे स्वदेशी हों या विदेशी - घोर मांसाहारी हैं अतः यदि दलाईलामा के भोजन में मांस, मछली अन्डे और मुर्गे का समावेश हो तो आश्चर्य ही क्या ? परन्तु फिर भी हम कुछ सोचने के लिये अवश्य विवश हो जाते हैं महात्मा बुद्ध आजीवन अहिंसा, भूतदया और प्राणिमात्र के प्रति मैत्री पूर्ण व्यवहार का उपदेश देते रहे। यद्यपि बौद्ध धर्म में मांसाहार का कोई आग्रह पूर्ण निषेध नहीं है और बुद्ध के जीवनी लेखक तो स्वयं बुद्ध की मृत्यु का कारण भी उनकाशूकर मांस का भक्षण ही मानते हैं। फिर भी इतना तो निश्चय है कि अहिंसा के महत्व देने वाले व्यक्तियों का मांसाहारी होना उनकी कथनी और करनी में महद् अन्तर उपस्थित करता है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि बुद्ध तत्कालीन वैदिक यज्ञ प्रणाली के विरोधी केवल इसलिये बने कि उन यज्ञों में प्राणियों की हिंसा होती थी। इस प्राणि हिंसा का कारण थी पुरोहित वर्ग की जिव्हा लोलुपता जिसके वशवर्ती होकर वे यज्ञों में पशुओं को मारते और अपनी रसना को तृप्त करते थे। और यह भी सत्य है कि बुद्ध ने इस रसना लोलुप पुरोहित वर्ग और उनके हिंसा रंजित कर्मकाण्ड के विरूद्ध आवाज उठाई। तो क्या यह सोचना उचित और तर्क पूर्ण नही होगा कि यदि बुद्ध मांस लोलुप पुरोहितों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाते हैं तो मांस भक्षण में निश्चय ही उनकी सम्मति नहीं है। अशोक आदि राजाओं का पशु पक्षियों की रक्षा करना और उनके लिये चिकित्सालय खुलवाना इतिहास सिद्ध तथ्य है ऐसीस्थिति में बौद्धों का मांसाहार उनके प्रवर्तक और

हमारी विचारधारा:-

हमारे साप्ताहिक अधिवेशन

लेखक— श्री पं० भवानीलाल 'भारतीय' एम ए.

सामूहिक उपासना (Congregational Worship) जिस रूप में आज हमारे समाज में प्रचलित है, प्राचीन काल में भी वह उसी रूप में प्रचलित रही होगी, यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। निश्चय ही वैदिक धर्मावलम्बी यदाकदा सम्मिलित रूप से यज्ञादि के वृहद आयोजनों द्वारा राष्ट्र और समाज में सामूहिक चेतना का संचार करते रहते थे। उपनिषदों में राजर्षि जनक द्वारा आयोजित यज्ञों और वृहद् आध्यात्मिक समारम्भों का विस्तार पूर्वक उल्लेख मिलता है जिनमें सहस्त्रों की संख्या में तत्व-वेत्ता ऋषि, महर्षि एकत्रित होकर ब्रह्म विद्या विषयक वार्तालाप करते थे। नैमिषारण्य में अट्ठासी हजार ऋषियों द्वारा सम्मिलित रूप से पुरातन आख्यानों को सुनने की कथा भी इसी ओर संकेत करती है।

परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में हमारे देश ने जिस महान धार्मिक पुनरुत्थान के आन्दोलन को देखा, उसमें कुछ पाश्चात्य प्रभाव भी दृष्टिगोचर हो रहा था। आर्यसमाज का पूर्ववर्ती ब्रह्मसमाज ईसाइयत के अनुकरण पर प्रत्येक शनिवार को सांयकाल ७ से ६ बजे तक अपने साप्ताहिक अधिवेशन लगाता था जिसमें वेदपाठ. वेद व्याख्या के अतिरिक्त आध्यात्मिक प्रवचन और भजन आदि कार्यक्रम भी होते थे। आर्यसमाज के अधिवेशनों में भी यही परिपाटी अपनाई गई जो आजतक किसी न किसी प्रकार चल रही है।

आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों को विधिवत चलाने के लिये आर्य जगत की शिरोमणि सभा- सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक पद्धति का निर्माण किया है। आर्यसमाजों से यह आशा की जाती है कि वे इस पद्धति का पालन करें और ऐसी चेष्टा करें जिससे कि इन साप्ताहिक अधिवेशनों को अधिकाधिक लोकप्रिय , रोचक और उपयोगी बनाया जा सके। परन्तु बहुधा यह देखा गया है कि इन सत्संगों का जितना लाभ आर्यसमाज को मिलना चाहिये उतना मिल नहीं पाता। अधिकांश में यह कार्यक्रम एक रूढ़िबद्ध प्रणाली पर चलता रहता है।

साधारणत: आर्यसमाजों के साप्ताहिक अधिवेशनों में सामूहिक संध्या, हवन, भजन, कथा, प्रवचन और समाचार सूचनायें आदि के कार्यक्रम रहते हैं। अधिवेशन का कोई समय नियत नहीं रहता। कहीं कार्यक्रम विलम्ब से प्रारम्भ होता है, और कहीं जल्दी कई समाजों में रविवार की सायंकाल को अधिवेशन लगते देखे गये हैं। साप्ताहिक अधिवेशनों में सामूहिक संध्या और हवन प्राय: उपेक्षित से रहते हैं। साधारणत: यह समझा जाता है कि अधिवेशन के आरम्भ में किये जाने वाले यज्ञ का जिम्मा समाज के मंत्री व कुछ यज्ञ प्रेमी , कर्मकाण्डी महानुभावों का है जो सत्संग में ठीक समय पर उपस्थित हो जाते हैं। अन्य सदस्य तो अपनी वैयक्तिक रुचि और सुविधा के अनुसार आते हैं। आर्यसमाजों के अधिवेशनों में किये जाने वाले यज्ञों की प्रणाली में सर्वत्र एकता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। हम आर्यसमाज के कर्मकाण्ड में प्रचलित असंगतियों और असमानताओं पर अपनी

विचारधारा के अन्तर्गत अन्य किसी अंक में प्रकाश डालेगे, परन्तु यहां इतना लिख देना ही पर्याप्त है कि साप्ताहिक सत्संगों में किये जाने वाले यज्ञों की विधि को एक सूत्र में पिरोकर उसे सर्वत्र समान भाव से प्रचलित करने के निश्चित आदेश देना सार्वदेशिक धर्मार्य सभा का प्रमुख कर्तव्य हो जाता है।

यज्ञ के पश्चात् कुछ सामूहिक भजन बोलने की परिपाटी है। संगीत मानव हृदय को आकृष्ट करने का एक प्रमुख साधन है, परन्तु खेद है कि आर्य-समाज ने संगीत की ओर बहुत कम ध्यान दिया। तभी तो अक्सर यह फब्ती सुनने में आती है कि आर्य-समाजी भजनीकों ने संगीत की हत्या कर दी है। साप्ताहिक अधिवेशन में यद्यपि ईश्वर भक्ति के ही भजन बोलने चाहिये, परन्तु कौनसा ऐसा विषय शेष रह जाता है जिस पर आर्यसमाजी गायक अपने उद्गार प्रकट नहीं करते। भजनों के पश्चात कथा और प्रवचन की बारी आती है। अकसर ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश तथा अन्यान्य वैदिक, आर्ष ग्रन्थों को कथा करने के लिये चुना जाता है, परन्तु जिस व्यक्ति पर कथा का भार होता है वह प्रायः अपने विषय का पंडित नहीं होता और न विषय की तैयारी करने का कष्ट ही उठाता है। परिणाम यह होता है कि वह कथा के प्रति श्रोताओं की रुचि उत्पन्न करने में असफल हो जाता है।

कथा के पश्चात् उपदेश और प्रवचन होने चाहिये। साधारणतः प्रति सप्ताह कोई उच्च कोटि का विद्वान आकर किसी समाज में प्रवचन करे, यह तो सम्भव नहीं, ऐसी स्थिति में प्रवचन का भार समाज के किसी स्वाध्याय शील सदस्य के जिम्मे पड़ता है। होना तो यह चाहिये कि उपदेश और प्रवचन करने वाला सभासद अपने विषय की पूरी तैयारी करे और अपने वक्तव्य को अधिक से अधिक सरल, रोचक, और बोधगम्य बनाने की चेष्टा करे। परन्तु देखा यह गया है कि आज आर्यसमाजों के अधिवेशनों में उपदेश और प्रवचन के नाम पर जो कुछ वाहियात, उट पटांग बातें कही जाती हैं उन्हे सुनकर कोई भी नया व्यक्ति आर्यसमाज की ओर आकृष्ट होना तो दूर रहा, जो रहे सहे व्यक्ति होते हैं वे भी धीरे धीरे सत्संगों में आना कम कर देते हैं।

यह है साप्ताहिक अधिवेशनों का वास्तविक स्वरूप। आर्यसमाज जिस रूढ़िवादिता के विरुद्ध आरम्भ से आन्दोलन करता रहा, आज वह स्वयं भी रुढ़िवाद का शिकार हो रहा है। ऐसी स्थिति में हम क्या करें? हमारे विचार से साप्ताहिक सत्संगों के सुधार और परिष्कार के लिये निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना अत्यावश्यक है —

[१] सत्संग का समय निश्चित रहे। इसके लिये सार्वदेशिक सभा ग्रीष्म और शीत ऋतु के दिन मान को लक्ष्य में रखकर वर्ष भर के लिये दो समय विभाग नियत करे, जिनका प्रत्येक समाज दृढ़ता से पालन करे।

[२] यज्ञारम्भ से पूर्व सामूहिक संध्या हो, जिसमें समस्त सदस्य अनिवार्य रूप से उपस्थित रहें यज्ञ का भार मन्त्री और दो चार अन्य लोगों पर ही नहीं छोड दिया जाय। यह भी हो सकता है कि मन्त्री प्रति सप्ताह के लिये चार सभासदों को सपत्नीक यज्ञ में बैठने के लिये आहून करे। इसका यह लाभ होगा कि समाज का प्रत्येक सदस्य यज्ञ विधि सीख जायेगा। समाज का पुरोहित या कोई अन्य स्वाध्यायशील विद्वान यज्ञ का ब्रह्मा माना जाय और उसकी आज्ञा का कठोरता

से पालन किया जाय। यज्ञ की सामग्री और अन्य उपकरणों तथा यज्ञ वेदी की स्वच्छता का भार सेवक को सौंपकर निश्चित हो जाना मंत्री के अनुत्तरदायित्व का सूचक है।

[३] यज्ञ के पश्चात् ईश्वर भक्ति के एक या दो भजन हों। ऐसे भजन सामूहिक रूप से भी गाये जा सकते हैं। अमीचन्द, नारायण प्रसाद बेताब, वासुदेव, नाथूराम शंकर, प्रकाशचन्द्र कविरत्न आदि के भजन उच्च कोटि के हैं जिनका सामान्यतया उपयोग किया जाना चाहिये। सामूहिक रूप से गाये जाने वाले भजनों के अतिरिक्त जो भजन गाये जाँय उनके लिये वाद्यों का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु यह ध्यान रक्खा जाय कि संगीत के माधुर्य व स्वारस्य की कहीं भी हत्या न हो। सत्संगों में खण्डनात्मक और राजनैतिक विवादपूर्ण पद्यों के लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिये।

[४] जिस पुस्तक की कथा की जाय, उसका प्रसंग पूर्व से ही श्रोताओं को ज्ञात होना चाहिये। कथा करने वाला अपने विषय की पूरी तैयारी सप्ताह भर करे। कथा के समय हर सदस्य के पास उस ग्रन्थ की एक एक प्रति का होना अधिक लाभप्रद हो सकता है। जिस प्रकार गिरजे की ओर प्रयाण करते समय एक ईसाई बाइबिल लेना नहीं भूलता, इसी प्रकार कोई आर्य सत्यार्थप्रकाश के बिना समाज मन्दिर में क्यों प्रवेश करे?

[५] यथा सम्भव वेद मन्त्रों के आधार पर ही प्रवचन और उपदेश हों। उपदेशों में विषयान्तर करना, अनावश्यक दृष्टान्त देने लगना अथवा सामयिक राजनैतिक आन्दोलनों की अनावश्यक चर्चा और आलोचना करने लगना उपदेश के महत्व को नष्ट कर देता है। आर्यसमाज की वेदी की पवित्रता की रक्षा करना प्रत्येक आर्य सभासद का कर्तव्य है। आर्यसमाजों के साप्ताहिक अधिवेशनों को व्यर्थ के वादविवाद और पार्टी के अखाड़े बनने से बचाना आवश्यक है।

[६] अधिवेशन में सम्मिलित होने वाले प्रत्येक आर्य सभासद की उपस्थिति को अंकित करने के लिये एक रजिस्टर रहना चाहिये।

[७] समाज के अधिकारी साप्ताहिक अधिवेशन की सफलता के लिये विशेष प्रयत्नशील हों। वे सभासदों को सपरिवार सम्मिलित होने के लिये प्रेरित करें और स्वयं उसके लिये उदाहरण स्वरूप बनें।

[८] आर्यसमाज उपासना मन्दिर हैं। अतः उनकी पवित्रता और मर्यादा की रक्षा करना अत्यावश्यक है। जिन समाजों में कन्या पाठशालायें तथा अन्य शिक्षण संस्थायें चलती हैं, उनमें मन्दिरों की पवित्रता और भव्यता नहीं रहती। फलस्वरूप वहाँ का वातावरण आध्यात्मिक भावों के उद्रेक करने में असफल रह जाता है। यही कारण है कि आर्यसमाज शुष्क, नीरस, तर्कवादियों के संगठन के रूप में कुख्यात हो रहा है। उसमें भक्ति और उपासना के दिव्य भावों का अभाव हो गया है।

क्या हम यह आशा करें कि आर्यसमाजों के अधिकारी गण इस ओर ध्यान देकर अपने साप्ताहिक सत्संगों को यथार्थ में उपयोगी बना सकेंगे?

शेष पृष्ठ ३७ का

पूर्व पुरुषाओं से कोई बहुत अधिक श्लाघनीय वस्तु नहीं है और वैदिक यज्ञों का उनके द्वारा यह कह कर विरोध किया जाना कि वे लोगों की मांस लोलुप प्रवृत्ति के कारण उद्भूत हैं वैसा ही है जैसा स्वयं शीशे के मकान में बैठ कर दूसरों पर पत्थर फेंकना।

स्वाध्याय का पृष्ठ -

सनत्कुमार का नारद के प्रति उपदेश

(ले० श्री भवानी लाल 'भारतीय' एम० ए०)

उपदेश की इच्छा से महर्षि नारद भगवान् सनत्कुमार के समीप गये और बोले, "भगवान् मुझे उपदेश प्रदान करें।" सनत्कुमार ने उनकी पात्रता जानने के लिये उनसे पूछा - तुम जो कुछ जानते हो, वह मुझे बतलाओ, ताकि मैं उसके आगे की बात बता सकूं। उत्तर में महर्षि नारद ने जिन विद्याओं के नाम बताये, उनकी लम्बी सूची यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि प्राचीन उपनिषद् कालीन ऋषियों का ज्ञान कितना विस्तृत था। विभिन्न प्रकार की भौतिक और आध्यात्मिक विद्याओं को आत्मसात् कर लेने के पश्चात् भी उनकी ज्ञान पिपासा चरम तत्व का साक्षात्कार न कर लेने तक शान्त नहीं होती थी।

नारद ने कहा, महाराज मैं चारों वेदों के अतिरिक्त इतिहास, पुराण, व्याकरण, श्राद्ध कल्प, गणित, खगोल उत्पात ज्ञान, तर्क शास्त्र, नीति शास्त्र निरुक्त, ब्रह्म विद्या अर्थात् वेदांग ज्ञान, भूतविद्या, क्षत्र विद्या, धनुर्वेद, नक्षत्र विद्या, ज्योतिष् सर्प विद्या, और नृत्य, गान, वाद्य और शिल्पादि विज्ञान जानता हूँ। ज्ञान राशि के बृहद् कोशों के सदृश इन विभिन्न विद्याओं के जानने के उपरान्त भी नारद को सन्तोष नहीं हैं। उसने कहा, "भगवन् मैं केवल मंत्र वेत्ता ही हूँ। आत्म वेत्ता नहीं। मैं ने आप जैसों से सुना है कि आत्म वेत्ता शोक के पार कर लेता है। अतः मैं आपसे उस उपाय को जानना चाहता हूँ जिससे मनुष्य शोक सागर से पार हो जाय।

नारद की बहुज्ञता को जानते हुये भी सनत्कुमार समझ गये कि ये सब शास्त्र अपरा विद्या के ही अन्तर्गत आते हैं। परा विद्या वह है जिसमे अक्षर, ब्रह्म का ज्ञान होता है। अब तक नारद ने केवल नाम को ही जाना है। नाम को जानने का तात्पर्य है केवल पुस्तकीय ज्ञान शाब्दिक-ज्ञान। यहाँ से ही सनत्कुमार का उपदेश प्रारम्भ हो जाता है। नाम से आगे जो क्रम चलता है उसमें वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्राण, चौदह तत्व आते हैं। इस प्रकार प्राण के आधार भूत आत्म तत्व की प्रतीति कराने के पश्चात् सनत्कुमार ने सत्य, विज्ञान, मति श्रद्धा, निष्ठा, कृति और सुख को जानने योग्य बताया। यह शाश्वत सुख भूमा रूप परमात्मा में स्थित है

"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति"

निश्चय जो भूमा है वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है। भूमा ही सुख है। भूमा की ही जिज्ञासा करनी चाहिये।

उस भूमा रूप परमात्मा को जानने के पश्चात् कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। भूमा अमृत है और जो अल्प है वह मर्त्य हैं। नारद ने पूछा; "भगवन् यह भूमा किसमें प्रतिष्ठित हैं?" सनत्कुमार बोले, "परमात्मा स्व महिमा में ही प्रतिष्ठित है।

शेष पृष्ठ ३४ पर

ईश्वर : एक दार्शनिक विवेचन

[ले० श्री पन्ना लाल परिहार बी० ए० एल० एल० बी०, जोधपुर]

विश्व में एक सर्व नियन्ता गूढ़ और व्यापक सच्चिदानन्द सत्ता है। परन्तु सूक्ष्म होने पर दिखती नहीं। फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता। ।। वेद का उपदेश है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यते अयनाय ।।

अर्थात् विश्व में व्यापक पुरुष विशेष महान शक्ति को मैं जानता हूँ जो दिव्य प्रकाश रूप और अन्धकार प्रकृति से परे सूक्ष्म है। उसी परम पुरुष को जान कर प्राणी मृत्यु या जन्म मरण के बन्धन से पार हो जाता है। मुक्ति का मार्ग इसके सिवाय कोई नही है।

क्या यह सत्ता सिद्ध या प्रमाणित हो सकती है? सांख्य दर्शन ने लिखा है कि ईश्वरा सिद्धेः। ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता। इस वाक्य से कई लोग सांख्य को अनीश्वरवादी या नास्तिक बताते है। परन्तु यह भ्रम है। कपिल का अभिप्राय यह है कि साधारण प्रमाण और साधनों से ईश्वर असिद्ध है। क्योकि परमेश्वर आत्म ज्ञान का विषय है। यह योग द्वारा जाना जाता है। साधारणतया वस्तु की सिद्धि लक्षण और प्रमाण से होती हैं। प्रमाण तो एक वृत्ति है। वृत्ति मन का व्यापार है। मन व बुद्धि से परे सूक्ष्म सत्ता है परमात्मा। अतः बुद्धि की पकड़ और पहुँच से परे है भगवान। पतंजलि ने ईश्वर का लक्षण दिया है- जो क्लेश, कर्म विपाक (कर्म फल) और आशय (हृदय या मन चतुष्टय) से सूक्ष्म, अछूता पुरुष विशेष है, वह ईश्वर है। इस प्रकार परमेश्वर इन्द्रियों से परे और मन और बुद्धि से सूक्ष्म है। परमात्मा आत्मा के अनुभव का विषय है अनुमान और शब्द प्रमाण से हम अपने को पिता का पुत्र मानते है। देखा किसने।

परमात्मा के प्रमाण में प्रत्यक्ष, उपमान और शब्द प्रमाण भी सन्तोषप्रद नहीं होते। अनुमान में प्रमाण से काम लिया जाता है। लिंग या लक्षण के ज्ञान से लिंगी का ज्ञान करना अनुमान है। जहां पर धूंवा है वहां अग्नि है। अनुमान तीन प्रकार का होता है। पूर्ववत अर्थात् कारण से कार्य जानना। शेषवत अर्थात् कार्य से कारण जानना और सामान्य शेषवत अनुमान से परमात्मा को जानो। सृष्टि है तो सृष्टा भी है।

अनुमान के अन्तर्गत चार प्रकार की युक्तियां दी जाती हैं। (१) एक सृष्टि रचना सम्बन्धी [cos mological]

(२) कारण और उद्देश्य सम्बन्धी (teleological)

(३) कर्म, फल, पाप पुण्य सम्बन्धी (moral)

[४] अस्तित्व और आधार आधेय सम्बन्धी (ontologieal)

कारण और कार्य का नियम सर्वत्र काम कर रहा है। सृष्टि में चेतनता भी है। उसका उद्देश्य है जो चेतन सत्ता का पता देता है। बिना चेतन के ज्ञान आया कहां से। ज्ञान का आदि स्रोत है जहां से विकास होता है। कर्मवाद में पाप पुण्य के फल दुख सुख मिलते हैं। पाप करके भी कोई दुख नहीं चाहता। न्याय नियम से यथावट फलदाता कोई है। कर्म जड़ है और चेतन के आश्रित है। कर्म जड़

स्वयं फल नहीं दे सकता। विश्व का आधार भी कोई है। निराधार कोई वस्तु ठहर नहीं सकती। ज्ञान का क्रमशः विकास केवल अनुभव के आधार पर होना संभव नहीं। सृष्टि से पूर्व ज्ञान का दाता होना चाहिये।

अनुमान की युक्ति बुद्धिवाद का विषय है। इससे किसी हद तक सन्तोष होता है। प्रथम आत्मा को जानो। आत्मा की अमरता स्वयं सिद्ध है। मैं सोचता हूँ। इसलिये कोई विचारक भी विद्यमान अवश्य है। अभाव से भाव नहीं बनता। इसलिये मेरा अस्तित्व जो वर्तमान में है वह पहले भी था और भविष्य में भी रहेगा। यह है आत्मा का अस्तित्व और अमरपन। कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकता। अब इसी युक्ति को आगे बढ़ाओ। शरीर में जैसे आत्मा है, वैसे ही विश्वात्मा होना चाहिये।

विश्व में प्रत्येक विज्ञान विभाग में असंख्य अटल नियम कार्य कर रहे हैं। सूर्य का उदय और अस्त होना, ताराओं की गति, ऋतु परिवर्तन आदि में कहीं त्रुटि नहीं है। नियमों के पीछे एक योजना है, उद्देश्य है जो छुपा हुआ है। योजना बिना चेतन और ज्ञान सत्ता के संभव नहीं। जड़ पदार्थों में योजना बनाने की शक्ति नहीं है। जड़ में चेतनता और ज्ञान कहां से आया। दो पदार्थों के मेल का परिणाम चेतन ज्ञान नहीं हो सकता यदि ऐसा मानो तो जिन पदार्थों से कोई वस्तु बनी है, उनमें भी गुप्त रूप से चेतनता विद्यमान थी। अन्यथा अभाव से भाव कैसे हो गया।

विश्व में सर्वत्र अटल नियमों का जाल बिछा हुआ है। विज्ञान के प्रत्येक विभाग में नियम काम कर रहे हैं। कार्य का कारण अवश्य होता है। प्रत्येक वस्तु में गति हो रही है। गति का स्रोत अवश्य है। नियम है तो नियामक भी है। सृष्टि एक महान प्रबन्ध है। प्रबन्धक भी है। इस मिल्कियत का मालिक भी है। लावारिस नहीं है। संसार के पदार्थ अवयव से बने हैं। बनाने वाला भी है। अवयव स्वयं नहीं जुड़ जाते। उपादान कारण (Material cause) के साथ निमित्त कारण (Efficient cause) भी हैं। घड़ा है तो मिट्टी भी है और कुम्हार भी। स्वभाव से ही कोई वस्तु बनती नहीं। स्वभाव का अर्थ है स्वस्य भाव (Inherent Quality) जो किसी पदार्थ में सदा रहता है। यदि सृष्टि का स्वभाव बनने का है तो बनती ही चली जायगी। बिगड़ेगी नहीं। यदि सृष्टि का स्वभाव बिगड़ने का मानो तो वह बिगड़ती ही चली जायगी। और यदि इसका स्वभाव बनना और बिगड़ना दोनों है तो क्षण क्षण में वह बनती बिगड़ती रहेगी। उसमें स्थिरता नहीं हो सकती। यदि यह मानें कि नियत समय पर ऐसा होना स्वभाव है तो यह ज्ञानपूर्वक योजना का फल है जो पदार्थ में नहीं। अतः स्वभाववाद ठीक नहीं है।

तब प्रश्न उठता है कि क्या सृष्टि अकस्मात (Chance) से बन गई है। ऐसा भी संभव नहीं। वर्णमाला के अक्षरों को वर्षों तक उछालते रहो। फिर भी कोई शब्द स्वतः नहीं बनते न पुस्तक रची जा सकती। चेतन और ज्ञान पूर्वक सत्ता अक्षरों को लिखकर ग्रन्थ रचती हैं सृष्टि के परमाणु भी किसी चेतन ज्ञानी सत्ता के आधार से कार्य कर रही है जड़ परमाणुओं में चेतनता और ज्ञान कहां हैं।

यह विश्व मानों एक जीवित माता का उदर है। यदि माता मर जावे तो उदरस्थ बच्चा कैसे जीता रह सकता है

लोग कहते हैं कि घड़ी तो है परन्तु घड़ी साज नजर नहीं आता। इसलिये घड़ी का बनाने वाला नहीं है। हलुआ सामने है। उसमें घी, शक्कर, मैदा, पानी सब है। परन्तु मिलाने वाला हलवाई कहां है, उसे हलवे में दिखाओ। अनुमान लगाने का कहने हैं तो वे प्रत्यक्ष प्रमाण का आग्रह करते हैं। आत्मा का अनुभव और अभ्यास का कहते हैं तो वे इस पचड़े में नहीं पड़ते। वे कहते हैं कि जैसे नदी का बनाने वाला कोई नहीं है तो सूर्य का बनाने वाला कैसे माने? यह युक्ति उनकी भ्रमात्मक है। सिद्ध कोटि से चल कर साध्य कोटि की वस्तु सिद्ध की जाती है। नदी और सूर्य दोनों ही साध्य कोटि में हैं। सही? उदाहरण यह है कि जैसे ताजमहल का बनाने वाला था तो कमल जो सृष्टि है उसका स्रष्टा भी है।

क्या आत्मा और ईश्वर प्रत्यक्ष हो सकता है। उत्तर है योग साधन द्वारा आत्मा से परमात्मा को जानो। इसका अष्टांग योग का क्रम निर्धारित है। अभ्यास और वैराग्य से आगे बढ़ो तो परमात्मा का प्रत्यक्ष या साक्षात्कार होगा। अन्तःकरण (हृदय) की गांठ खोलो। चित्त की स्थिरता करो। वृत्तियों का निरोध करो तो आत्मा का प्रकाश अनुभव होगा। अन्यथा चित्त वृत्तियों की समानता ही सृष्टि का स्वरूप है।

ईश्वर का कर्ता कोई नहीं। कर्ता का कर्ता नही होता। ईश्वर चल और अचल दोनों है। चुम्बक अचल है परन्तु लोहे को चलाता है ईश्वर अशरीरी है फिर भी अपने स्वभाविक ज्ञान बल से सृष्टा है। माता अपने उदर में बच्चे के हाथ पैर नहीं बनाती। वे स्वयं बनते हैं नियम से। ईश्वर सृष्टि का रचयिता है. निमित्त कारण है। वह उपादान नहीं है, उपादान कारण नहीं है। प्रकृति उपादना कारण है। जीव सान्त है फिर भी योग और आत्म दर्शन द्वारा अनन्त परमेश्वर की थाह? ले सकता है। माता पिता ने हमें नहीं बनाया। वे तो पार्थिव शरीर के निमित्त कारण हैं। सृष्टि में जो अटल नियम काम कर रहे हैं उनमें कोई त्रुटि नहीं है, अपवाद नही है। अपवाद और त्रुटि का भान हमारी एकांगी सीमित ज्ञान की दृष्टि है। सर्वज्ञ की दृष्टि में सब कुछ ठीक है। यदि कोई ईश्वर को नहीं मानता है तो इससे भगवान पर कोई असर नहीं। वह व्यक्तिगत हानि उठाता है। परमात्मा सर्व गुणों की खान और दिव्यप्रकाश पुंज है। यदि कोई सर्वोत्तमसत्ता का आश्रय नहीं लेता, गुणों को धारण नहीं करता और प्रकाश से दूर रहना चाहता है तो यह उसी की हानि है। उपासना करना अपनी ही भलाई करना है इसमें हमारा ही स्वार्थ है। यह परमेश्वर की प्रशंसा या खुशामद नहीं है। भगवान किसी से खुश और नाराज नही होता।

प्रश्न उठता है कि ईश्वर को क्यो माने? उत्तर है कि आनन्द प्राप्ति के लिये परमात्मा की उपासना करो। सत चित से सच्चिदानन्द बनो। प्रभु के सम्पर्क से आनन्द होगा और सुख दुख का द्वन्द्व मिटेगा और जन्म मरण के चक्र से छूट जावोगे। उपासना से शुभ कर्म में प्रवृत्ति होती है। ईश्वर के न्याय नियम के भय के कारण वृथा

अभिमान दूर रहते हैं। जीवन में एक उच्च आदर्श भी होना चाहिये। परमात्मा हमारा आदर्श है, ध्येय है, उसकी प्राप्ति ही मोक्ष है, परमानन्द है, उपासना से चित्त शुद्धि होती है। आत्मिक बल बढ़ता है। हममें नम्रता और उत्साह आते हैं। विश्व में हमारे सुख साधन जिसने जुटाये हैं, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना भी उपासना है। जो प्रभु भक्त है, वह जनता को भी प्रेम करता है।

केवल कर्तव्य पालन से जीवन अधूरा है। यह एक पहिये की गाड़ी होगी। कर्म के साथ ब्रह्म ज्ञान भी जरूरी है। विद्या और अविद्या दोनों को साथ साथ जानो। केवल कर्म करना बिना उद्देश्य की यात्रा है।

प्रश्न है कि यदि कर्तव्य कर्म ही करते रहें तो ईश्वर विश्वास और उपासना की क्या आवश्यकता है। निष्काम कर्म द्वारा ही हमें मोक्ष मिल जायगा। उत्तर है कि अविद्या (कर्म) और विद्या दोनों को साथ साथ जानो। अविद्या से मृत्यु (दुख) से तर जावोगे। परन्तु विद्या [ब्रह्म ज्ञान] द्वारा अमृत [मोक्ष] का भोग करोगे। (यजु- ४०) ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। ज्ञान ही मुक्ति है। वही मुक्ति का स्वरूप है। हृदय ग्रन्थि के विच्छेद होने पर कर्म का क्षय होता है। कर्म हम अपने अन्त: करण के अनुसार करते हैं। परन्तु जीव अल्पज्ञ और सान्त है। वह भूल कर सकता है। उससे सत्य मार्ग और उद्देश्य प्रदर्शक उच्च शक्ति का सहारा लेना जरूरी है। उपासना मानो हमारे अन्त: करण का साबुन है। इससे चित्त शुद्धि होती रहती है और दिव्य प्रकाश मिलता रहता है। केवल कर्म करना एकांगी यात्रा है। वह बिना लक्ष्य का काम है। कर्म तो साधन है। ज्ञान साध्य है।

बिना साध्य (लक्ष्य) के केवल साधन (कर्तव्य कर्म) से मानो अंधेरे में टटोलना है। यात्री को भटकने जाने की संभावना है।

कर्म से तो दुख से छुटकारा होता है। वह स्वर्ग का मार्ग है। परन्तु मुक्ति का मार्ग तो ज्ञान है जो उपासना से आता है। केवल कर्म क्षेत्र में विचरने से मिथ्याभिमान होता है जिससे अत्याचार, अनाचार की संभावना है क्योंकि मनुष्य अपने से अन्य उच्च सत्ता को मानता ही नहीं उच्च सत्ता परमेश्वर को मानने और उसकी उपासना से कर्म में उत्साह होता है। गीता में भी कर्म योग को सरल साधन माना है परन्तु सांख्य योग को श्रेष्ठ बताया है। सर्वज्ञ, सर्व शक्ति से सम्पर्क से अल्पज्ञ आत्मा को दीप्त करते रहो। यही भक्ति है। इसमें ईश्वर का कोई स्वार्थ नहीं। हमारी ही भलाई है। निष्काम कर्म से तो संचित कर्मों का क्षय होता और नवीन कर्म नहीं जुड़ते। यह मार्ग नकारात्मक है। आनन्द मिलना तो ब्रह्म ज्ञान द्वारा ही होता है। कर्म तो यज्ञ रूप है जिससे स्वर्ग सुख मिलता है। मोक्ष तो ज्ञान से मिलेगा। कर्म से मनोवृत्ति होती है। इस वृत्ति के निरोध बिना आत्म दर्शन का आनन्द नहीं हो सकता। जिस प्रभु ने हमें सब कुछ दिया है उसके लिये कृतज्ञता प्रकाश करना भी उपासना है। यह हमारा धर्म है यद्यपि इससे परमात्मा की प्रशंसा का प्रश्न नहीं है। अत: यजु० ४० में कहा है—

विद्यां च अविद्यां च यस्तद् वेदो भयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया मृतं मश्नुते।

शेष पृ० ४८ पर देखिये

सैद्धान्तिक चर्चा–

" सत्यार्थ प्रकाश भाष्य--चतुर्थ समुल्लास "

लेखक —[वैदिक गवेषक श्री पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक' बी० ए० सिद्धान्तवाचस्पति ।]

गतांक से आगे

"सोलहवें वर्ष से ले के चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से ले के अड़तीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है।"

भाष्यः--मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिये हमारे ऋषियों ने सोलह संस्कार निर्माण किये हैं। इनमें विवाह संस्कार अत्यन्त विचारणीय संस्कार है। विवाह के मुख्यतः दो उद्देश्य माने जाते है—[१] दाम्पत्य प्रेम, [२] सन्तानोत्पत्ति। इन दोनों में प्रथम ही मुख्य है। यह दाम्पत्य प्रेम जो विवाह का सर्वोच्च उद्देश्य और गार्हस्थ्य जीवन का सर्वस्व है स्त्री-पुरुषों में कब उत्पन्न होता है? आइये पाठक-वृन्द हम पर विचार करें।

बड़े बड़े मनीषियों के विचार हैं कि वैदिक काल में कन्याओं के विवाह प्रौढ़ावस्था में होते थे जिससे सह-ज ही दाम्पत्य प्रेम उत्पन्न होता था। जब से समाज में बाल विवाह रूपी कोढ़ ने प्रवेश किया है तबसे समाज का अधःपतन हो रहा है और गार्हस्थ्य जीवन नारकीय दृश्य हो रहा है। अब भी यदि कन्याओं का विवाह प्रौढ़ावस्था में हो तो गार्हस्थ्य जीवन सुख—मय हो जायेगा।

अब-प्रौढ़ावस्था के विवाह का प्रमाण वेद, गृह्य-सूत्र तथा विद्वानों के विचारों से प्रदर्शित किया जाता है।

आर्षप्रमाण — "ब्रह्मचर्येण कन्या३युवानं विन्दते पतिम्" [अथर्व० कां० ११ सू० ५, मं० १८]

महर्षि दयानन्दजी भाष्य — "जैसे लड़के ब्रह्म—चर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे [कन्या] कुमारी [ब्रह्म—चर्येण] ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान (युवानम्) पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे। इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये।" ३

चतुर्वेदभाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ — '(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के पालन से (कन्या) कन्या (युवानं पतिम् विन्दते) युवापति को प्राप्त करती है।" ४

सिद्धान्त-मर्मज्ञ, विद्याभूषण पं० सुरेन्द्र शर्मा गौड़ वेद-काव्यतीर्थ, साहित्योपाध्याय — "ब्रह्मचर्य पूर्वक युवती कन्या ब्रह्मचारी युवा पुरुष को पति चुने।" ५

कतिपय पौराणिक पण्डित इस मंत्र के "ब्रह्म—चर्येण" पद को 'युवानं' के साथ जोड़ते हुये यह अर्थ करने का प्रयास करते हैं कि "कन्या ब्रह्मचर्य

३. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास।
४. अथर्ववेद संहिता भाषाभाष्य, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ २३२-२३३
५. साप्ताहिक 'आर्य-मित्र' वर्ष ४१, सितम्बर १, सन् १९३८ ई०।

...युवक पति को प्राप्त करती है। कन्या का अर्थ भी ...दस वर्षा भवेत् गौरी...." आदि कल्पित श्लोकों के आधार पर १० वर्ष की बालिका करते हैं फिर उसके लिये वेदाध्ययन की आज्ञा ही कैसे हो सकती है।

किन्तु श्री सायणाचार्य जी के भाष्य (जिसे सभी पौराणिक पण्डित मानते हैं) से इन कल्पित अर्थों की निवृत्ति स्वयं हो जाती है।

श्री सायणभाष्य — "अत्रापि ब्रह्मचर्य प्रशस्यते (कन्या) अकृत विवाहा स्त्री ब्रह्मचर्य चरन्ती तेन ब्रह्मचर्येण (युवानम्) युवत्व गुणोपेतम् उत्कृष्टं [पतिम्] [विन्दते] लभते।"

अर्थात् — "यहाँ ब्रह्मचर्य की प्रशंसा है। कन्या ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करती हुई उसके द्वारा युवक उत्तम पति को प्राप्त करती है।"

यहाँ पर श्री सायण ने कन्या का अर्थ १० वर्ष की बालिका न करते हुए 'अविवाहा स्त्री' ऐसा किया है और 'ब्रह्मचर्य चरन्ति' इन शब्दों को लिखते हुए उस अनर्थ का परिहार कर दिया है जो 'ब्रह्मचर्येण' को 'युवानम्' के साथ जोड़ने का व्यर्थ और अप्रासंगिक यत्न किया जाता है।

ऋग्वेद ३।३३।१० के भाष्य में श्री सायण ने 'कन्या' का अर्थ 'युवतीः' ऐसा किया है। ऋग्वेद १०।७७।२० के भाष्य में भी "अभिनव योषना" यह 'कन्या' का अर्थ किया है। "विन्दते" पद का अर्थ श्री कुल्लूक भट्ट ने मनुस्मृति ६।९० की टीका में 'स्वयं वृणीत' अर्थात् स्वयं चुनाव करे, यह किया है।

यहाँ जिस 'ब्रह्मचर्य' शब्द का प्रयोग है उसकी व्याख्या श्री सायणाचार्य ने इसी सूक्त, अध्याय ११।७ के अनेक मंत्रों में इस प्रकार की है "ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति"।

अध्याय ११।७।१७ की व्याख्या में वे लिखते हैं:—

"ब्रह्मचर्येण— ब्रह्मवेदः तदध्ययनार्थमाचर्यम् आचरणीयं समिदाधान भैक्ष्यचर्योर्ध्वरेतस्त्वादिकं ब्रह्मचारिभिरनुष्ठीयमानं कर्म ब्रह्मचर्यम् तेन"।

अर्थात् — ब्रह्म का अर्थ वेद है उसके अध्ययन के लिये जो भी ब्रह्मचारियों द्वारा किये जाते हैं वे ब्रह्मचर्य शब्द में आते हैं।

इस सूक्त के प्रथम ही मंत्र में जो ब्रह्मचारी शब्द आया है उसकी व्याख्या में श्री सायणाचार्य लिखते हैं :-"ब्रह्माणि-वेदात्मके अध्येतव्ये चरितुं शीलमस्य स तथोक्तः"।

अर्थात्— ब्रह्मचारी वह है जो वेद के अध्ययन में विशेषरूप से तत्पर है। ब्रह्म का अर्थ वेद होता है और चर्य में जो चर धातु है, उसके अर्थ गति अर्थात् ज्ञान, गमन, प्राप्ति और भक्षण हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का मुख्य शब्दार्थ वेद का ज्ञान प्राप्त करना सिद्ध होता है।

श्री शंकराचार्य ने "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्" - इस कठोपनिषत् के वचन की व्याख्या में 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ "गुरुकुलवास-लक्षणम् अन्यद् वा ब्रह्मप्राप्त्यर्थम्" ऐसा किया है अर्थात् गुरुकुल में वास अथवा ब्रह्म-परमात्मा और वेद की प्राप्ति के लिए जो कर्म किया जाय ऐसा किया है।

सूचना

सार्वदेशिक आर्य वीर दल की कार्यकारिणी के निश्चयानुसार प्रान्तीय आर्य वीर दल राजस्थान का शिक्षण - शिविर दिनांक २४ जून १९५९ से २१ जून १९५९ तक श्री ओमप्रकाशजी त्यागी प्रधान संचालक, के संचालन में जोधपुर में लग रहा है। इस शिविर में शारीरिक, बौद्धिक व राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का प्रशिक्षण दिया जाय।। ईसाइयों के राष्ट्र - विरोधी कार्यों को रोकने के लिये विशेष शिक्षण दिया जायगा। शिविर में आर्य नेताओं के भाषण व उपदेश आदि का आयोजन किया जायगा। शिविर में सम्मिलित होने के लिये प्रवेश-पत्र, नियमावली आदि कार्यालय से ३०।५।५९ तक प्राप्त करलें।

सुखदेव - संचालक रामस्वरूप आर्यप्रेमी—मंत्री

प्रान्तीय आर्य वीर दल, राजस्थान।

पृ० ४२ का शेष

सनत्कुमार बोले, "परमात्मा स्व महिमा में ही प्रतिष्ठित है। संसार के महिमावान पदार्थों में लोग गो, अश्व, हाथी, स्वर्ण, दास, भार्या, भूमि और रत्न की गणना करते हैं परन्तु सनत्कुमार की सम्मति में ये पदार्थ अल्प महिमा वाले हैं। समग्र विश्व ब्रह्माण्ड जिस परम पुरुष के एक पाद स्थानीय है, उस भूमा परमात्मा की सर्व व्यापकता का बखान करते हुये सनत्कुमार पुनः बोले – वह भूमा ही ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, दायें, बायें; – सर्वत्र है। उसे ज्ञात कर यह सब कुछ जान लिया जाता है — येन ज्ञातं सर्वं इदं विज्ञातं भवति।

छान्दोग्योपनिषद की यह कथा प्राचीन ऋषियों के विस्तृत शास्त्र-ज्ञान की परिचायक है और साथ ही ब्रह्म तत्व के प्रति उनकी प्रबल जिज्ञासा प्रवृत्ति की सूचक है।

❋—:(०):—❋

शेष पृष्ठ ४५ का

केवल कर्म योग जीवन में एक पहिये की गाड़ी है। कर्म तो बाह्य रूप है। ज्ञान आन्तरिक स्वरूप। कर्म है प्रकृति के सम्पर्क से प्रतिक्रिया। ज्ञान से आत्मा से सम्पर्क होकर आनन्द प्राप्त होता है। प्रकृति की प्रतिक्रिया द्वन्द (दुख और सुख है) अतः आन्तरिक पक्ष पर ध्यान रख कर उपासना करना कर्तव्य है।

अतः हम सबको परमात्मा की उपासना श्रद्धा पूर्वक करनी चाहिये।

(❋—❋)

शेष पृ० ४७ का

"आवेनवो धुनयन्तामशिश्वीः
सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्वाः।
नव्या नव्या युवतयो
भवन्तीर्महद् देवानामसुरत्वमेकम्।" (ऋ० ३।५५।१६)

अर्थात्–' जो दुही नहीं हैं ऐसी गौओं की नाईं अविवाहित बालकावस्था से रहित सब उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करने वाली कुमारावस्था को उल्लंघन कर यौवनावस्था को प्राप्त होती हुई नवीन नवीन शिक्षा से युक्त विद्वानों द्वारा दिये गये विज्ञान को प्राप्त पूर्ण शिक्षित युवतियाँ गर्भ धारण करें।"

क्रमशः

सम्पादक श्री चांदमल आर्य द्वारा श्री प्रभा प्रेस, जोधपुर में मुद्रित व प्रकाशित।



निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ भर्तृहरि

वर्ष १

परामर्श मण्डल—

[१] पं० धर्मदेव विद्या वाचस्पति, विद्यामार्तण्ड गुरुकुल, कांगड़ी ।

[२] पं० भवानी लाल 'भारतीय' एम. ए. सिद्धान्त वाचस्पति, सदस्य, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ।

[३] पं० शिव पूजनसिंह कुशवाहा "पथिक" सिद्धान्त वाचस्पति कानपुर ।

वेदसुधा

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्यः अभयं नः पशुभ्यः ॥
यजु० ३६/२२

व्याख्याः– समस्त विश्व में परमेश्वर व्याप्त है । ब्रह्माण्ड का ऐसा कोई कोना नहीं जहां ईश्वरीय सत्ता विद्यमान न हो। ऐसी अवस्था में सच्चा ईश्वर विश्वासी संसार में निर्भय होकर विचरण करता है तथा परम पिता से अभय कामना करता हुआ कहता है कि — 'हे प्रभो, आप इस समग्र विश्व ब्रह्माण्ड में जहाँ २ सर्वत्र सम्यक प्रकार से चेष्टा कर रहे हैं, वहाँ २ हमें अभय बनाइये हमारी प्रजा और हमारे पशु हमें कल्याण और मंगल देने वाले हों तथा हम उनसे निर्भय रहें।

अंक ४, ५, ६

संरक्षक—
रावतसिंह चौहान

सम्पादक—
चांदमल आर्य

प्रबन्ध सम्पादक—
विश्वम्भरदयाल एम. ए
सिद्धान्त वाचस्पति

व्यवस्थापक—
घीसूलाल आर्य

जेठ, आषाढ, श्रावण सं० २०१६ वि० आर्यपथ कार्यालय वार्षिक मूल्य ३ रुपये
श्री मद्दयानन्दाब्द १३४ आर्य समाज रातानाडा एक प्रति २५ न० पै०
जोधपुर (राजस्थान)

* आर्यपथ के नियम *

(१) आर्यपथ प्राचीन वैदिक विचारधारा का प्रसारक और आर्य ऋषियों द्वारा प्रचारित संस्कृति के पुनरुत्थान का पक्षपाती मासिक पत्र है।

(२) यह पत्र प्रतिमास १५ वीं तारीख को प्रकाशित होता है। यदि दिनांक २५ तक न पहुँचे तो [illegible] सूचना देने पर दूसरी प्रति भेजी जा सकती है।

(३) वार्षिक मूल्य ३) रू० धनादेश [मनी आर्डर] द्वारा अग्रिम भेजना चाहिये। वी०पी० मँगवाने मे ग्राहक को ५० न०पै० अधिक देने पड़ते हैं।

(४) आर्यपथ का नया वर्ष [फाल्गुन] से होता है। वर्ष का प्रथम अंक विशेषांक होता है।

(५) आर्यपथ के ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

(६) प्रकाशनार्थ लेख और रचनायें सम्पादक आर्यपथ, आर्य समाज, रातानाडा, जोधपुर के पते से आने चाहिये। लेख सरल संक्षिप्त सारगर्भित और मौलिक हों। सैध्दान्तिक और आर्य समाज की जीवन्त समस्याओं के सम्बन्ध मे आलोचनात्मक और विवेचनात्मक लेखों को प्राथमिकता दी जायगी लेख स्पष्ट और शुद्ध हों, तथा कागज के एक ओर लिखे हों। उनका प्रकाशित करना अथवा संशोधित करना सम्पादक के आधीन होगा। अन्यत्र प्रकाशित रचनाओं को स्थान नहीं दिया जायगा। डाक व्यय प्राप्त होने पर अस्वीकृत रचनायें लौटाई जा सकेंगी।

(७) विज्ञापन के लिये अग्रिम धन का आना आवश्यक है। सम्पूर्ण पृष्ठ के १०) रू० और आधे पृष्ठ के ५) रू०। अश्लील और गर्हित रुचि के विज्ञापन नहीं छापे जायेंगे।

(८) पत्र व्यवहार के समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

(९) पत्र की सामग्री और उसके बाह्य प्रसाधनके सम्बन्ध में पाठको से सुझाव भेजने की प्रार्थना की जाती है।

(१०) पत्र का नमूना निःशुल्क भेजा जाता है।



आर्य समाज के संगठन में दरारें

ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज का विधान प्रजातांत्रिक पद्धति पर निर्मित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिस समय आर्यसमाज की स्थापना हुई उस समय लोक तंत्र अपनी प्रयोग कालीन अवस्था में था। यूरोप में लोक तंत्र का उस समय तक पर्याप्त प्रचार हो चुका था, परन्तु भारत में आर्य समाज ने ही सर्व प्रथम उसे क्रियात्मक रूप दिया जब कि राजनैतिक क्षेत्र के लोग इससे सर्वथा अपरिचित ही थे।

यद्यपि आर्य समाज ने प्रजातंत्र के आधार पर अपने संगठन का निर्माण किया परन्तु कालान्तर में यही प्रजातंत्र प्रणाली उसके लिये अभिशाप बन गई। कारण यह है कि आर्य समाज केवल एक सभा मात्र ही नहीं है। वह एक सार्वभौमधर्म है जिसका आधार शिला के रूप में ईश्वरीय ज्ञानवेद को सुप्रतिष्ठित किया गया है। अब यदि कोई धर्मप्रचारक संस्था लोक तंत्र पद्धति को स्वीकार करती है तो ऐसा करते समय उसे कुछ प्रतिबंधों में बांधना आवश्यक है। आर्यसमाज में यह त्रुटि रह गई। उसने यद्यपि सभासदों के लिये सदाचार का प्रतिबंध अवश्य लगाया, परन्तु इस ' सदाचार ' की न तो कोई व्याख्या या परिभाषा ही की गई और न किसी व्यक्ति को आर्य समाज का सदस्य बनाते समय इस बात का ध्यान ही रक्खा गया कि वह सदाचार के उन नियमों का पालन भी करता है या नहीं, जिनका उल्लेख आर्यसमाज के उपनियमों में हुआ है।

परिणाम स्पष्ट है। आर्यसमाज की सत्ता और नियंत्रण जो विद्वान् सन्यासियों और पूज्य ब्राह्मणों के हाथ में होनी चाहिये, वह आज वकीलों, डाक्टरों और व्यवसायकुशल व्यक्तियों के हाथों में है जिनमें सांसारिक योग्यता तो चाहे पर्याप्त मात्रा में हो परन्तु जो आर्य समाज जैसी धर्म और आध्यात्म प्रधान संस्था का नेतृत्व करने के लिये सर्वथा अयोग्य हैं। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में जहाँ मन्वादि धर्मशास्त्रकारों के आधार पर राजनीति का विधान किया है वहीं उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि हजारों मूर्खों की अपेक्षा एक विद्वान् सन्यासी या ब्राह्मण की सम्मति का अधिक महत्व है। परन्तु आज स्थिति सर्वथा विपरीत है। आज हम देखते हैं कि छोटी से छोटी समाज से लेकर बड़ी से बड़ी सभाओं तक में दल बंदी विद्यमान है। स्वार्थी लोग अपने क्षुद्र स्वार्थों की सिद्धि के लिये अपने सहयोगियों की सहायता से पदों पर आसीन हो जाते हैं और तब तक हटने का नाम नहीं लेते जब तक कि उनसे भी अधिक प्रबल प्रतिरोधियों से उनका मुकाबला न हो।

यह स्थिति सर्वथा अवांछनीय है। यदि आर्य समाज जीवित रहना चाहता है और इस प्रगतिशील संसार के प्रति द्वन्द्वितापूर्ण संघर्षमय समरांगण में कुछ करतब दिखाना चाहता है तो उसके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह

अपने उत्तरोत्तर जर्जर होने वाले ढांचे को सुदृढ़ बनाने का उपाय सोचे। अन्यथा यह पार्टीबाजी और दल बंदी जो आज समाज के उच्च कोटि के नेताओं को भी भ्रमित किये हुये है एक दिन आर्यसमाज के अस्तित्व को ही समाप्त करके दम लेगी।

विगत ३ मासों में आर्य समाज के सर्वोच्च संगठन सार्वदेशिक सभा और अन्यान्य प्रान्तों की अपेक्षा सर्वाधिक शक्तिशाली प्रान्त पंजाब की प्रतिनिधि सभा में जो कुछ हो रहा है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। सार्वदेशिक सभा के इस वर्ष के वार्षिक अधिवेशन का दृश्य जिस ने भी देखा वह इस बात को अवश्य स्वीकार करेगा कि आर्यों की शिरोमणि सभा के सभासदों की बैठक में जैसी शालीनता, सौम्यता, सभ्यता और अनुशासन का वातावरण रहना चाहिये उसका इस अधिवेशन में नितान्त अभाव था।

यह तो स्पष्ट ही है कि इस बार के निर्वाचन में दो तीन प्रान्तों के सदस्यों ने मिलकर कुछ निश्चय किया और चूँकि सभा में उन २ प्रान्तों का स्पष्ट बहुमत था, अतः उन्हें अभीष्ट सफलता प्राप्त हुई। हम निर्वाचन पर कुछ भी टिप्पणी न करते हुये इतना निवेदन करना चाहते हैं कि कुछ प्रान्तों के प्रतिनिधि संख्या में अत्यधिक होते हैं जैसे पंजाब और उत्तर प्रदेश तथा कुछ अन्य प्रान्तों, यथा बम्बई, बंगाल, मध्यप्रदेश और राजस्थान में प्रत्येक ३-४ प्रतिनिधियों से अधिक नहीं लिये जाते। ऐसी परिस्थिति में एक दो प्रान्तों के प्रतिनिधि जो निर्णय या निश्चय कर लेते हैं वह स्वीकार हो जाता और अल्प मत वाले प्रान्तों के प्रतिनिधि केवल मूक दृष्टा मात्र रह जाते हैं। अस्तु।

यह तो हुई सार्वदेशिक सभा की अवस्था। अब पंजाब के जालन्धर और हरियाना क्षेत्रों के आर्य नेताओं में परस्पर सिरफुटौवल हो रही है, वह किसी से छिपा नहीं है। पंजाब सभा के सब से पुराने कार्य कर्ता और अधिकारी महाशय कृष्णजी का सभा से आधी शताब्दी के पश्चात् सम्बन्ध विच्छेद हुआ। तत्पश्चात वैद्य सत्यव्रत द्वारा सभा कार्यालय की तालाबंदी, सभा द्वारा वैद्यजी को सभा और समाज के सभी पदों से पृथक करना, और वैद्यजी द्वारा सभा के मान्य अधिकारियों पर रुपये के गोलमाल आदि के ४२० धारा के अन्तर्गत अभियोग चलाना आदि सभी घटनायें किस ओर संकेत कर रही है? क्या यह आर्यसमाज के विघटन का प्रारम्भ तो नहीं है? यह सुनने में आरहा है कि इस विवाद को आपस में सुलझाने की चेष्टा हो रही है और आर्य समाज का मान्य सन्यासीवर्ग इसके लिये कृत निश्चय है। यदि यह झगड़ा आर्य समाज के व्यक्ति आपस में बैठ कर निपटा लेते हैं तब तो अच्छा ही है अन्यथा इसविवाद की वृद्धि से आर्यसमाजके यश, सम्मान, प्रतिष्ठा और उसकीमर्यादा की जो स्पष्ट हानि हो रही है वह नितान्त खेद जनक है।

अन्त में हम यही निवेदन करना चाहते हैं कि आर्यसमाज के कर्णधारों ने समय रहते इस कठिन और निराशाजनक परिस्थिति पर नियन्त्रणनहीं किया तो एक दिन आयगा जब कि आर्य समाज एक संगठन के रूप में समाप्त हो जायगा। ऋषि दयानन्द और उनके सिद्धान्त अमर रहेंगे, परन्तु आर्यसमाज का कोई नाम लेवा भी नही रहेगा।

* * *

टिप्पणियाँ

ब्रह्म कुमारियों की संस्था पर प्रतिबन्ध लगाया जाय

समाचार पत्रों के पाठक ब्रह्म कुमारी संस्था के अनैतिकता पूर्ण कार्यों और धर्म के नाम पर पाखण्ड और दुराचार को प्रोत्साहन देने वाले उसके कार्य क्रम से भलीभाँति परिचित होंगे। जब से श्री रामगोपालजी शालवाले ने इसके विरुद्ध अपना मोर्चा लगाया है तब से इस पाखण्ड पूर्ण समाज के संचालकों और धर्म के नाम पर भोलीभाली सन्नारियों के धर्म को दूषितकरने वाले धूर्तों को इस मंडली में खलबली मच गई है। ब्रह्म कुमारी संस्था के संचालितियों ने आदरणीय शालवाले जी को अनेक दुर्वचन कहे हैं और उन पर मुकदमे चलाने की भी धमकी दी है। परन्तु पाखण्ड और पापाचार के महान बिध्वंसक दयानन्द के सच्चे शिष्य ऐसी धमकियों से भय भीत होने वाले नहीं हैं।

आर्य समाज को चाहिये कि वह ब्रह्म कुमारी संस्था के विरुद्ध जनमत जाग्रत करे और आबूशैलशिखर तथा दिल्ली आदि उक्त संस्था के प्रमुख केन्द्रों पर चलने वाले कार्य क्रमों का पता लगा कर जनता में इसका भण्डाफोड़ करें। यह संस्था अपने आपको 'ईश्वरीय' कहती है और दिल्ली में इसने अपना एक ईश्वरीय विश्व विद्यालय खोल रक्खा है। अपने आपको ईश्वरीय कहने वाले ईश्वर की आज्ञाओं का उल्लंघन कर सती साध्वी स्त्रियों को उनके गृहस्थ बंधन से क्यों च्युत करते हैं? क्या इनका, उनके पास कोई उत्तर है। आज आर्यसमाज पुनः ऐसे पाखण्डियों को शास्त्रार्थ के लिये खुली चुनौती दे और जहां २ यह संस्था कार्य कर रही है, वहाँ २ निर्भीक होकर इसका खण्डन किया जाय ऐसा करके आर्य समाज एक महान लोकोपकारी कार्य करेगी।

प्रान्तीय सभाओं से एक निवेदन ---

अकसर यह देखा जाता है कि आर्यसमाजों के वार्षिक निर्वाचनों के लिये किसी निश्चित तिथि की नियुक्ति प्रान्तीय सभाओं द्वारा नहीं की जाती। परिणाम यह होता है कि आर्यसमाजों के निर्वाचन वर्ष भर तक चलते ही रहते हैं और प्रान्तीय सभा में उनके प्रतिनिधित्व को लेकर भी अनेक बखेड़े होते रहते हैं। पंजाबसभा की इस आज्ञा को देख कर हमें अत्यन्त संतोष हुआ कि उक्त प्रान्त की समाजें एक निश्चित तिथि के पूर्व तक अपना २ निर्वाचन करलें और प्रतिनिधियों का भी चुनाव करलें।

हम राजस्थान प्रांत की प्रतिनिधिसभा से भी यह निवेदन करना चाहते हैं कि वह भी इस प्रान्त की समाजों के वार्षिक अधिवेशनों और चुनावों को समानता लाने के लिये इस प्रकार के आदेश जारी करें। अन्यथा देखा तो यहाँ तक गया है कि किसी २ आर्य समाज के अधिकारी अपने क्षुद्र स्वार्थों के वशी भूत होकर २-३ वर्ष तक समाजों के पदों से चिपके रहते हैं। दुख तो तब होता है जब यह देखा जाता है कि ऐसी समाजों के अन्तरंग सभासद भी आँख मूँद कर ऐसे अधिकारियों के अप्रजातांत्रिक कार्यों के लिये अपनी मौन स्वीकृति दे देते हैं और सभा के पदाधिकारियों के ध्यान में ऐसे तथ्यों के होने पर भी वे कोई कार्य वाही करने में अपने को विवश अनुभव करते हैं। यदि आर्य समाजों में ऐसी धाँधलियां चलती रही तब तो उसमें प्रजातंत्र की आत्म हत्या ही समझना चाहिये। प्रशंसित सभा इस ओर ध्यान देवे।

हमारी विचारधारा

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी: परोपकारिणी सभा

[ले० श्री पं० भवानीलाल भारतीय एम० ए०, सिद्धान्त वाचस्पति, सदस्य-सार्वदेशिक आर्य प्र० सभा]

महर्षि दयानन्द ने उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह के प्रधानत्व और कविराज श्यामलदास के मंत्रित्व में अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की स्थापना की। इसका मुख्य प्रयोजन था महर्षि के स्वर्गारोहण के पश्चात् देशदेशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों में वैदिक धर्म का प्रचार करना और वैदिक यंत्रालय के द्वारा ऋषि कृत वैदिक ग्रन्थों का मुद्रण, प्रकाशन और प्रचार। महर्षि के अनन्य भक्त और आर्यसमाज की पहली पीढ़ी के सभी नेता उस समय परोपकारिणी सभा के सभासद बनाये गये। राय मूलराज, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपालराव, हरि देशमुख, श्यामजी कृष्ण वर्मा आदि प्रभावशाली लोग परोपकारिणी के प्रारम्भिक सदस्य थे।

कालान्तर में पुरानी पीढ़ी का स्थान नई पीढी ने लिया। जोधपुर के महाराजा सर प्रतापसिंह, शाहपुराधीश नाहरसिंहजी जो महर्षि के परम भक्त आर्य नरेश थे आदि राजपुरुषों ने भी अनेक वर्षों तक परोपकारिणी सभा का नेतृत्व किया। शाहपुराधीश श्री नाहरसिंहजी के पश्चात उनके पुत्र स्व० शाहपुराधीश श्री उम्मेदसिंहजी भी परोपकारिणी सभा के प्रधान रहे अजमेर के सुप्रसिद्ध आर्य नेता दीवान बहादुर श्री हरविलासजी शारदा ने आजीवन परोपकारिणी सभा का कार्य किया। सम्प्रति इस सभा के प्रधान आर्य-जगत के ख्याति प्राप्त नेता महाराय कृष्णजी और मंत्री अजमेर निवासी डा० मानकरण शारदा हैं जो स्व० देशभक्त कुंवर चांदकरण शारदा के अनुज हैं।

परोपकारिणी सभा का विधान महर्षि के जीवन-काल में ही रजिस्टर्ड हो गया था। इस विधान में एक बहुत बड़ी त्रुटि रह गई, जिसके परिणाम-स्वरूप परोपकारिणी सभा आर्य जनता की आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ रही। परोपकारिणी सभा के सभासदों में से किसी का स्थान रिक्त होने पर उस स्थान की पूर्ति करने का अधिकार सभा के उस समय के अन्य सभासदों को ही दिया गया। ऐसी स्थिति में आर्यजनता और आर्य समाजें परोपकारिणी सभा के कार्यों में चाहने पर भी कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती क्योंकि उनका कोई प्रतिनिधि परोपकारिणी सभा में तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि सभा के मौजूदा सदस्य ही उसे स्वीकार न कर लें। परोपकारिणी का यह विधान आर्यसमाज में प्रचलित प्रजातांत्रिक विधान के सर्वथा प्रतिकूल है।

परोपकारिणी सभा के विधान में जो मौलिक त्रुटि रही उसके भयंकर परिणाम भी हमारे समक्ष आये। सभा का आधिपत्य जिन लोगों के हाथों में रहा, वे अपने मनपसन्द सदस्यों को लेकर रिक्त स्थान पूर्ति करते रहे जिसके फलस्वरूप कभी २ तो इसके अधिकांश सदस्य किसी न र विशेष या परिवार विशेष तक ही बंधे रह गये।

यह तो विधान की बात हुई। अब जरा परोपकारिणी सभा द्वारा किये गये कार्यों का विचार किया

जाय। यह आशा की गई थी कि यह सभा महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न होगी और उनके किये गये कार्य को पूरा करेगी परन्तु हमें दुख के साथ लिखना पड़ता है कि परोपकारिणीसभा नेअपने संस्थापक ऋषि की इच्छाओं को पूरा नहीं किया। देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में वेद धर्म के प्रचार की बात ही छोड़िये - यह कार्य तो परोपकारिणी सभा ने कभी हाथ में लिया ही नहीं - उसने महर्षि के तथा अन्य आर्ष वैदिक ग्रन्थों के प्रकाशन और मुद्रण के महत्वपूर्ण कार्य में भी अत्यन्त असावधानी रक्खी। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

ऋषि के ग्रन्थों का मुद्रण अत्यन्त असावधानी के साथ किया गया। मुझे स्मरण है कि डीडवाना (राजस्थान) के शास्त्रार्थ के समय हम लोग सनातनी पण्डित माधवाचार्य से मिलने गये। वार्तालाप के प्रसंग में उसने कहा — "तुम आर्यसमाजी अपने ग्रन्थों को तो शुद्ध छाप नहीं सकते।। मैंने सत्यार्थ— प्रकाश के अब तक के प्रकाशित २३ संस्करणों की परस्पर तुलना की है, और मैं यह कह सकता हूँ कि कोई भी दो संस्करण सम्पूर्ण रीत्या मेल नहीं खाते। जब तुम्हारे आचार्य के ग्रन्थ की यह दशा है तो तुम अन्य ग्रन्थों में प्रक्षेपादि की क्या चर्चा करते हो" बात कुछ अंशों में सत्य है। यदि सत्यार्थप्रकाश के भिन्न-२ संस्करण भी परस्पर में भिन्नता रक्खें तो हम अपने विरोधियों को क्या कह सकते हैं?

वैदिक यंत्रालय से मुद्रित होने वाले अन्य ग्रन्थों के मुद्रण में कितनी असावधानी बरती जाती है यह निम्न तथ्यों से विदित होगा।

[१] अथर्ववेद की संहिता वैदिक यंत्रालय ने प्रकाशित की। उसमें ७ पृष्ठों का शुद्धाशुद्धि पत्र छपा है। सात पृष्ठों में शुद्धिपत्र छपने का यह अर्थ हुआ कि उक्त वेद संहिता में मुद्रण की सहस्रों भूलें हैं। हम अपने मान्य धर्म ग्रन्थों के प्रकाशन में इतनी असावधानी बरतते हैं और मुकाबला करना चाहते हैं उन लोगों से जिनके प्रेस में प्रथम तो कोई मुद्रण सम्बन्धी भूल होती ही नहीं और होती भी है तो स्वयं स्याही से सुधार कर ही विक्रयार्थ भेजते हैं। ७ पृष्ठों के शुद्धिपत्र वाला अथर्ववेद परोपकारिणी सभा का यह एक अनोखा तोहफा है।

[२] ऋषि कृत अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश वैदिक— यंत्रालय से छपा। उसमें विषय सूची गायब और तारीफ यह है कि यंत्रालय के प्रबंधक को इसका ज्ञान ही नहीं।

[३] ऋषि कृत ऋग्वेद भाष्य ९ या १० भागों में प्रकाशित हुआ था। उसके सम्पूर्ण भाग आज उप— लब्ध नहीं है। अब यदि कोई ऋषि भाष्य का प्रेमी सम्पूर्ण ऋषि भाष्य खरीदना चाहे तो उसे निराश होना पड़ेगा। आज ऋग्वेद भाष्य के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम खण्ड अनुपलब्ध हैं। इसी प्रकार यजुर्वेद के चार भागों में दूसरा भाग नहीं मिलता।

[४] ऋषि के ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियां परोप— कारिणी सभा द्वारा अधिकृत दयानन्द आश्रम में विद्यमान हैं। परन्तु यह कभी चेष्टा नहीं की जाती कि प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों का मिलान हस्तलिखित प्रतिलिपियों से करा लिया जाय। यद्यपि अनेक बार इसके लिये चेष्टा की गई, परन्तु कर्मचारी पण्डितो के परिवर्तन से यह कार्य जैसा होना चाहिये वैसा नहीं हुआ।

[५] फिर परपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित जो संस्करण उपलब्ध भी हैं उनका मूल्य अधिक है। ऐसी स्थिति में जनता ऋषि कृत ग्रन्थों की ओर आकृष्ट

क्यों होने लगी। जिस प्रकार बाईबिल सोसाइटी अथवा गीता प्रेस अपने प्रकाशनों को लागत मूल्य पर वितरित करते हैं उसी प्रकार की व्यवस्था श्री महयानन्दसरस्वती की उत्तरा धिकारिणी परोपकारिणी सभा को भी करनी चाहिये। परन्तु यहाँ तो सब कुछ उल्टा ही हो रहा है। यजुर्वेद संहिता मूल जो पहले दो रुपये में मिलती थी, आज वह ४) रु० में मिलती है। शिवशंकर शर्मा कृत उपनिषद् भाष्य जो पहले४ रु०मेंमिलते थेअबउनकामूल्य २॥ गुनाबढ़ाकर १०)रु०करदिया है।

[६] ऋषि के अनेक ग्रन्थों के प्रकाशन की तोसभा को फुर्सत ही नहीं है, क्योंकि यह आम शिकायत पहले से सुनने आरहे हैं कि परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित वैदिक यंत्रालयके पास रेलवे का मुद्रण कार्य ही इतना रहता है कि उसे आर्ष ग्रन्थों के छापने का अवकाश नहीं मिलता यह स्थिति है उस सभा की जिसको वैदिक धर्मोद्धारक प्रातः स्मरणीय ऋषि दयानन्द ने स्थापित किया और यह आशा की थी कि इस सभा के द्वारा भारत में नवजागरणों का कार्य हो सकेगा अब प्रश्न यह शेष रह जाता है कि इस परिस्थिति में हमारे लिये क्या कर्तव्य है क्या परोपकारिणी को इसी प्रकार निर्वीय और अकर्मण्य रूप में ही जीवित रहने का अधिकार है अथवा उसके द्वारा ऋषि दयानन्द के मिशन की पूर्ती के लिये कुछ श्रेष्ठ कार्य होने की हम आशा रक्खें। वैधानिक दृष्टि से तो परोपकारिणी सभा के कार्यों में हस्तक्षेप करने का अधिकार उसके सभा सदों के अतिरिक्त किसी को नहीं है। परन्तु हम यह भी जानते हैं कि परोपकारिणी सभा से भी एक ऊँची हस्ती है और वह है ऋषि की अनुयायिनी लक्ष लक्ष आर्य जनता। यह आर्य जनता परोपकारिणी सभा से यह पूछ सकती है कि ऋषिकीभावनाओं और उसकी आकांक्षाओं के प्रति यह खिलवाड़ क्यों किया जा रहा है?

आवश्यकता इस बात की है कि आज परोपकारिणी सभा में फैली अव्यवस्था के विरुद्ध संगठित जनमत जाग्रत किया जाय। आर्य समाजें, प्रान्तीय सभायें और सार्वदेशिक सभा परोपकारिणी के कर्णधारों पर इस बात के लिये जोर डालें कि ऋषि कृत ग्रन्थों और वेदादि शास्त्रों के मुद्रण और प्रकाशन की सुव्यवस्था की जाय। यदि सम्भव हो तो परोपकारीणी के विधान में संशोधन कराने की चेष्टा की जाय ताकि उसमें लोक तंत्र पर आधारित प्रणाली के अनुसार आर्य जनता के प्रतिनिधियो को स्थान मिल सके। फलस्वरूप ऋषि दयानन्द का वह दिव्य स्वप्न साकार हो सके जिसकी कल्पना उनके मस्तिष्क में इस सभा के निर्माण के समय थी।

* * *

नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्रइच्चरतः सखा ॥
चरैवेति, चरैवेति।

हे रोहित, सुनते हैं कि श्रम से जो नहीं थका ऐसे पुरुष को श्री नहीं मिलती। बैठे हुए आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसी का मित्र है, जो बराबर चलता रहता है इस लिये चलते रहो, चलते रहो।

आर्ष पथ कौन सा ?

श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' नरवाना (पंजाब)

मानव पथ, कल्याण पथ तो वेद का ही पथ है। वेद का पथ ही आर्ष पथ है। भटकती जगती को सरल और सीधा वेद पथ दर्शा कर ऋषि दयानन्द ने मानव समाज का बड़ा भारी उपकार किया है। मानव आज नाश और ह्रास की खाई में गिरता जा रहा है। दानवता आज मानवता की छाती पर दनदनाती है। विश्व कल्याण के लिए पुनः ऋषि के सन्देश को विचार कर हमें संसार के उपकार और उद्धार के लिए इसे आर्ष पथ पर लाना चाहिए।

देव दयानन्द की सबसे बड़ी देन मानव समाज को यह है कि उसने भले बुरे में भेद कर दिया। हमारा दावा है कि कोई मत, पंथ बुराई और भलाई अथवा पाप पुण्य की समस्या का समाधान नहीं कर सकता। केवल वैदिक धर्म ही ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण इस गुत्थी को सुलझा सकता है। वेद विद्या को लगा हुआ ताला तोड़ने का श्रेय ऋषि को ही है। ससार के वे पंथ जो "सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है" के भ्रम में फसे हुए हैं वे भला क्या बताएंगे कि शुद्ध बुद्ध, सच्चिदानन्द परमेश्वर कैसे भ्रम का शिकार हो गया ? जब ब्रह्म के सिवा है ही कुछ नहीं तो पाप कहां से आ गया ? चोरी, डाका, व्यभिचार और लूट खसोट उसी का गुण ठहरा न ? तार्किक दयानन्द के तर्क के तीरों से घायल यह भ्रम पंथी उत्तर देने में अक्षम है।

आर्य राष्ट्र का सत्यानाश इस अवैदिक मत ने कर दिया। जहां वेद माता ने "यो जागार तमृचः कामयन्ते.........॥ (ऋ० ५०४४०१४) अर्थात् जागने वाले की ऋचायें चाहना करती हैं, जागने वाले को यश और ऐश्वर्य प्राप्त होता है की लोरी देकर मानव को कल्याण मार्ग का पथिक बनने का आदेश दिया है। वहां इस अवैदिक वाद ने "संसार स्वप्न है" का भ्रम फैला कर आर्य राष्ट्र की कीर्ति, वैभव और स्वाधीनता की हत्या कर दी। इन तर्क हीन विचारों को धर्म समझ कर राष्ट्र की संतान निस्तेज और भीरु हो गई। चैतन्य तरुण धर्म से दूर हो गये और फैशन से नास्तिक बन गये। यदि ऋषि का प्रगतिशील पथ 'यो जागार........।' का प्रचार किया जावे तो युवा शक्ति आर्य ध्वज को अवश्य थामेगी।

किसी ने प्रचार किया कि अमुक पर विश्वास लाओ पाप मुक्त हो जाओगे। किसी ने किसी द्वारा पाप के दण्ड से मुक्त करवाने का आश्वासन दिया। इसका यही तो भाव है न कि धर्म का सार यही है कि पाप करते जाओ फिर भी धर्मात्मा ही रहोगे। धर्म दूतों की कृपा से ईश्वर के न्याय त्रिशूल के प्रहार से बच जाओगे। भला ये पंथ ससार का सुधार और उद्धार क्या कर सकते हैं ?

इस दम्भ पर कर्म सिद्धान्त का बम्ब फेंक कर ऋषि ने मानवता की लाज बचाली। यही उस की बड़ी भारी देन है।

कुछ पंथ यह मानते है कि केवल ईश्वर से सृष्टि रचना हुई है अर्थात सृष्टि रचना से पूर्व सिवा ईश्वर के कुछन था। यहवादभीयह नहीं समझा सकते कि जब सब कुछ प्रभु से बना है और कुछ था ही नहीं तो फिर बुराई को किसने जन्म दिया ?

ऋषि दयानन्द ने वेद के आधार पर सत्यार्थ प्रकाशकी भूमिका में इस उलझन को सुन्दरता से सुलझाया है कि मनुष्य की आत्मा हठ और दुराग्रह से पाप की ओर झुकता है। ऋग्वेद में आता है कि प्रभु में अपनी दीनता अर्थात अल्पज्ञता के कारण

कर्त्तव्य पथ से भटक गया। जीव की अल्पज्ञता ही पाप का कारण है। पाप क्या है? ईश्वर के सृष्टि नियमों का उल्लंघन पाप है। इस प्रकार के सरल तर्कयुक्त संगत विचार देव ने देकर मानव जाति को भारी देन दी है।

नास्तिक भी सुख शांति चाहते हैं परन्तु जीव और ईश्वर की सत्ता के बिना अन्धी प्रकृति से किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। त्याग की भावना मनुष्य में क्यों है? बलिदान का भाव कहां से आ गया? हम दूसरों को दुःख देकर सुख क्यों न पावें? इन प्रश्नों का नास्तिक उत्तर क्या देंगे?

कम्युनिस्ट विचार के लोग जो धन को ही पाप की जड़ मानते है वे इस बात का क्या उत्तर देंगे कि स्त्री के मोह में किसी का वध क्यों किया जाता है? पुत्रों के मोह में माता पिता दुःख क्यों पाते हैं? क्रोध और अहंकार की तृप्ति के लिए ऐसे कर्म क्यों किये जाते हैं जिनमे धन की ही हानि होती है? यदि खाने पीने रोटी कपडे की समस्या के समाधान से ही बुराई का अन्त सम्भव होतो रूस देश जो आर्थिक समस्याओं का आदर्श समाधान कर चुकने का दावा करता है उस रूस में बेरिया इत्यादि गण मान्य, क्रांतिकारी, अनुभवी साम्यवादी नेताओं को जनद्रोह के अभियोग में फांसी और गोली की भेंट न किया जाता। स्पष्ट है कि आर्थिक सम्पन्नता के साथ साथ जीवन की सर्वाङ्गीन उन्नति कुछ और भी चाहती है।

ऋषि दयानन्द संसार के धार्मिक महापुरुषों में पहले सन्त हैं जिन्होंने अपने पूर्वज ऋषियों की भांति आध्यात्मिक उन्नति के साथ साथ सामाजिक और आर्थिक उन्नति की कामना की। वेद को नीचा दिखाने के लिए जिस भाषा विज्ञान और विकासवाद का आश्रय लिया गया था आज थक कर चूर होने के बाद ये वाद यह स्वीकार करने पर विवश हो गये है कि "The problem of origin of language does not admit of any satisfactory solution.' Language by अर्थात भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न का कोई सन्तोष जनक समाधान नही। यहीं बस नही आज ऋषि के आर्षसिद्धान्त को मान्यता मिलरही है कि आदि मानव को परमेश्वर द्वारा भाषा बोध कराया गया।

Some scholars [among them puite tecently W. Schmidt] see the insuffici- euoy of usual theories and giving up all attempt for explaining it in a naturoe way fall back on the religious belief eh at the first language was bireetey given to frst men by God through mirie le Enceylo paebiabrita nica vol 13 page 702 1951 mpression

भाव यह है कि आज भी शिमट जैसे कई विद्वान भाषा विज्ञान की वर्तमान प्रचलित अयुक्तता तज कर इस धार्मिक सिद्धान्त के पोषक बन गये हैं कि आदि मानव को प्रभु ने भाषा बोध कराया था।

ऋषि ने भीरूकायर आर्य राष्ट्र के शिशुओं को जोबोलेसोअभयवैदिकधर्म की जय घोकदेकरक्याकम क्रांति की है। जन साधारण भी अन्य देशो में दुशासन से पीछा छुड़ाने के लिये उस काल त्राण [illegible] विलीन कर सुख का श्वास लेते है परन्तु यह पराधीन हृदये चढ़ा भारतीय समाज मृत मात्र [illegible] और [illegible] के भी भूत प्रेत चुडैल प्रा [illegible] अस्तित्व से डरता था। ऋषिने वेद माता की गोद में आकर अभय बनेने का अपूर्व पथ बताकर महान कल्याण किया मानव मन डर, किसी से न डर, न रात से न दिन से, न मित्र से न शत्रु से

ऋषि की औरदेन बताऊँ। राष्ट्र उत्थानके लिये ऋषि की महत्ता सत्यार्थ प्रकाश से आंकि जाती है वेद भाष्य आर्याभिविनय, व्यवहार भानु काभी कुछ ध्यान किया गया हैंपरन्तु संसकार विधि की खोज अभी अधूरी है। क्या देव की देन कम है कि नवजात शिशु के निर्माण के लिए बच्चे को यह बताओ तू आर्य अमृत पुत्र है इत्यादि कायर जातिको वीर बनाने का यही मानव पथ है दैवी पथ है यही कल्याण पथ

क्या पुराणोक्त श्री कृष्णाचरित्र आलंकारिक है ?

[ले० श्री प० धर्म देवजी विद्यामार्तण्ड]
गुरु कुल विश्व विद्यालय कांगड़ी

[प्रस्तुत लेख में सु प्रसिद्ध विद्वान् पं० धर्मदेवजी ने पुराणोक्त श्री कृष्ण चरित्र का आलोचनात्मक विवेचन करते हुये प्रमाण पुरस्सर यह सिद्ध कर दिया है कि पुराणोपबृंहित कृष्ण चरित्र वस्तुतः महा मानव कृष्ण के चरित्र को विकृत स्वरूप में प्रस्तुत करता है और जो लोग उसे आलंकारिक मान कर उसका परिमार्जन करने की चेष्टा करते हैं वे भी भ्रमग्रस्त ही हैं क्यों कि पुराणोंमें ऐसे स्पष्ट अश्लील अंशोंके रहते उनका आलंकारिक' माना जाना असम्भव ही है। श्री कृष्ण जन्माष्टमी के पुण्य पर्व पर हम ऋषि दयानन्द निर्दिष्ट महा पुरुष—योगि वर्य कृष्ण के चरित का कीर्तन करें और पुराणोक्त मिथ्या बातों के भ्रम जाल से अपने आपको मुक्त करें — यही हमारे लिये श्रेयष्कर होगा। —संपादक]

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में एक स्थान पर लिखा है कि देखो, श्री कृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म,स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है जिसमें, अधर्म का आचरण श्री कृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया है ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं दूध, दही , मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम , परस्त्रियों से रास मण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण में लगाये हैं। इनको पढ़पढ़ा सुन सुना के अन्य मत वाले श्री कृष्ण की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत नहीं होता तो श्री कृष्ण के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों कर होती ?' (सत्यार्थ प्रकाश ११ समुल्लास पृ: ४२२ आर्य साहित्य मण्डल प्रकाशन चतुर्थ आवृत्ति)

इस पर भी माधवाचार्य शास्त्री जैसे हमारे बहुत से पौराणिक भाई और उनके नवीन पक्ष पोषक श्री प० श्री पाद दामोदर सातवलेकरजी जैसे वैदिक विद्वान भी कहते हैं कि स्वामी दयानन्दजी ने पुराणोक्त श्री कृष्ण चरित्रके अभिप्राय को न समझ कर यह समालोचना की है। उनमेंसे श्री माधवाचार्य शास्त्री जैसे कई महानुभाव तो यह कहते हैं कि रास लीलादि के समय श्री कृषण की आयु केवल ७ वर्षकी थी, अतः उन पर व्यभिचारादि का दोष लग ही नहीं सकता। अन्य कई महानुभाव रासलीलादि की आलंकारिक आध्यात्मिक व्याख्या तथा अर्थ करते हैं। इनमें से एक भारत धर्म महा मंण्डल काशी के प्रधान स्वामी दयानन्द बी० ए० ने कभी कहा था कि श्री कृष्णकी १६१०८ नारियाँ न थीं पर नाड़ियां थीं और योग राज होने के कारण उन्होंने इन पर संयम कर रक्खा था, इसलिये उन्हे इनका पतिकहा गया है। श्री प० सातवलेकरजी ने कुछ मास पूर्व पत्रों में लेख लिखा था जिसमें राधा कृष्ण सम्बंध तथा रासलीलादि का शुद्ध आध्यात्मिक बताते हुये श्री कृषण के १६१०८ स्त्रियों के साथ विवाह को अपहृत महिलाओं के उद्धार का उत्तम औरअनुकरणीयआदर्श बताया था। ये बातें सुनने में अच्छी और प्रियलगती हैं और यदि पुराणोक्त चरित्र की सचमुच ऐसी आलंकारीक व्याख्या पौर्वा पर्य को देखने से होसकता तो हमें प्रसन्नता होती किन्तु निष्पक्षपात भाव से पुराणों का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये व्याख्यायें असत्य और कल्पित हैं जो शास्त्रार्थादि के समय आक्षेपों से बचने के लिए गढ़ ली गई हैं। पुराणोंसे भी इनका समर्थन नहीं होता। उदाहरणार्थ हम भागवत दशम स्कंध के रासलीला प्रकरण के कुछ श्लोकों को आधुनिक काल के दो प्रसिद्ध पौराणिक पण्डितों की टीका सहित उद्धृत करते हैं। भागवत १०।२६।३५ का श्लोक है—

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृत पूरकेण
हासावलोक कलगीत जह्णच्छायाग्निम् ।
चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखेते !!

इसकी पं० गोविन्ददास विनीत काव्य कला भूषण साहित्य भूषण काव्य मनीषी कृत(भागवत पुराणानुवाद श्याम काशी प्रेस मथुरा से प्रकाशित) टीका निम्न है — हे कृष्ण आपके हास्य दर्शन और मधुर गीत सेजो उनमें कामाग्नि उत्पन्न हुई है उसे आप अधरामृत रुपी पिचकारी से शान्त करिये, अथवा हे सखा हम कामाग्नि और विरहाग्नि दोनों से दग्ध शरीर होकर योगी पुरुषों की नाई आपके ध्यान द्वारा आप ही के चरणों के पास ही पहुँचेगीं । भागवत १०। २८। ३८ श्लोक और उसकी पं० गोविन्ददासजी कृत टीका निम्न है:—

तन्नःप्रसिद वृजिनार्दनतेऽङ्
घ्रिमूलंप्राप्ता विसृज्य
वसतीस्त्वदु पासनाशाः ॥
तत्सुन्दरस्मित निरीक्षणतीव्र
प्रकामन प्तमनां ॥
पुरुष भूषण देहि दास्यम् ॥

टीका हे दुख हरण हम पर आप कृपा कीजिये क्यों कि योगी जनों की भांति हम भी घर बार छोड़ कर आपकी सेवा की आशा से आपके चरण कमल में आई हैं हे पुरुष भूषण, आपके सुन्दर मन्द हास्य से उत्पन्न हुये तापकामदेव से सन्तप्त हम गोपियों को दासी पद दीजिये। पृ०२६५। इन्हीं श्लोकों की पं० रामतेज पाण्डेय साहित्यशास्त्री कृत— तथा पडित पुस्तकालय रेशम कटरा बनारस द्वारा प्रकाशित सामयिकी भाषा टीका निम्न है —हे प्यारे आपकी मन्द मुसकान भरी चितवन और आपके मनोहर गीत सेहमारे हृदय में प्रबल कामानल प्रज्वलित हो रहा है उसे अपने अधरामृत के प्रवाह से शान्त करिये नहीं तो आपके विरह से उत्पन्न अग्नि से हमारे शरीर भस्म हो जायेंगे। "

भागवतदशम स्कन्ध टीका (पृ० ५८)
'अतएव हे दुःख दलन आप हम पर प्रसन्न हों हम आपकी सेवा करने की आशा से ही अपने घरों को छोड़ कर आपकी चरण शरण को प्राप्त हुई हैं। हे पुरुष भूषण आपकी सुन्दर मुसकान भरीचारु चितवन से हमारा चित्त अत्यन्त काम सन्तप्त हो रहा है आप हमें दासी बनाइये। पृ० ५६ ऐसे स्पष्ट वर्णन के होते हुये इस रास लीला को आध्यात्मिक सम्बन्ध बताना अपने को और जनता को धोखादेना नहीं तो क्या है ? संस्कृत की श्रीधरी टीका और वल्लभाचार्य कृत सुबोधिनी तथा उसके आधार पर निर्मित गिरिधरकृत टीका में भी इसी प्रकार के अर्थ किये गये हैं जिन्हें विद्वान देख सकते हैं। हम श्री सातवलेकर जैसे विद्वानों का ध्यान इन तथा निम्न-लिखित अन्य श्लोकों की ओर आकृष्ट करते हैं।

रासलीला के निम्नवर्णनदेखिये:—बाहु प्रसारपरिरम्भ करालकोरुनीवीस्तनालभन नर्मनखाग्र पातैः। क्ष्वेल्या वलोकहसितैर्वजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार॥ १० । २६। ४६। श्रीधरी टीका— रमण प्रकारमाह बाहुप्रसारेति दूरे स्थितानां ग्रहणार्थं बाहुप्रसारणं, परिरम्भः—बलादा--कृष्यालिङ्गनम्, करादीनाम् आलम्भन स्पर्शश्च (नर्माणि) परिहास वचनानि ....तैश्च वृजसुन्दरीणां (रतिपतिम्) कामम् (उत्तम्भयन्) उद्दीपयन (रमयाञ्चकार) ताः रमयामास ॥ वलभाचार्य कृत सुबोधिनी टीका में भी संस्कृत व्याख्याइसी प्रकार की है जिसका प्रारम्भ—— एवं सर्व भावेन तासां (गोपीनां) स्मरक्षोर्कोलित्वं सम्पादितम् अतः परम अष्टविधालिङ्गनादि पूर्वकं चेष्टिकादियुक्त रस विलास चरित्रमाह।
............सयुक्तः कामोरतिपतिः—एवमाधिदैविकं कामम् उद्बाधयन् रमयांचकार गोपीनां सुखमेव प्रकटितवान् (पृ० १५४)

इन श्लोकों का पं० गोविन्ददास साहित्य भूषण, काव्य मनीषी कृत हिन्दी अनुवाद देखिये—— 'भुजाओं का फैलाना, आलिंगन करना, हाथ, वेणी जाँघ, नीवी, स्तन इनका स्पर्श करना, हास्य के

वचन कहना, नखों के अग्रभाग चुभाना, क्रीड़ा करनाः देखना और हंसना इन उपायों से ब्रज की स्त्रियों का कामोद्दीपन करते हुये भगवान् ने उनको रमण कराया। (पृ० २६३)

पं० रामतेज पाण्डेय साहित्य शास्त्री कृत हिन्दी टीका "हाथ फैलाना, आलिंगन करना, कर, अलक, जंघा, कटिवस्त्र के बंधन और स्तन आदिका स्पर्श करना, मजाक करना, नखक्षत करना, विनोद पूर्ण चितवन से ताकना और मन्द मन्द मुसकान आदि उपायों से ब्रजबालाओं का काम रसउद्दीप्त करते हुये भगवान् कृष्ण उन ब्रज बालिकाओं के साथ खेलने लगे।" (पृ० ५६) क्या यह सब आध्यात्मिक लीला है ! बलिहारी है ऐसी आध्यात्मिकता पर। भागवत १०।३१।१४ का श्लोक और उसकी टीकायें भी देख लीजिये और तब निश्चय कीजिये कि यह कैसी लीला है जिसका आरोप श्री कृष्ण पर किया गया है ? सुरत वर्धनं शोकनाशन स्वरित वेणुना सुष्टु चुम्बितम इतर राग विस्मारण नृणा वितर वीरनस्तेऽधरामृतम् ॥ श्रीधरी टीका— सुरत सम्भोग सुखम वर्ध यतीति सुरत वर्धनम् ।

पं० गोविन्ददास कृत भाषानुवाद —हे वीर ! कामोद्दीपक, शोकहारी स्वर से भरी बाँसुरीसेचुम्बित चक्रवर्ती आदि सुखों को भुलाने वाला अपना अधरामृत हमें दीजिये। (पृ० २६८) पं०रामतेज पाण्डेय साहित्य शास्त्री कृत अनुवाद हे वीरकाम सुख को बढ़ाने वाला शोक को दूर करने वाला बजती हुई अपनी बाँसुरी से भली भांति चुम्बित और मनुष्यों की, आसक्तियों को भुलाने वाला अपना मधुर अधरामृत हमें दान कीजिये। (पृ० ६२)

इस अप्रियप्रसंग को अधिक लिख कर हम भूमिका का कलेवर बढ़ाना नहीं चाहते किन्तुइतनेसे ही यह अत्यन्त स्पष्ट है कि रासलीला के समय श्री कृष्ण को ७ वर्ष का बालक बनाना, इस लीला को केवल विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेमसम्बन्ध सूचक बताना इत्यादि सब कल्पित मन गढ़न्त बातें हैं । १६१०८ नारियाँ मानने वाली बात भागवत पुराण के 'आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम आसन षोडश साहस्र महिष्यश्च रसाधिकम्।

तथा विष्णु पुराण के 'भगवतोऽप्यत्र मर्त्ये लोकेऽवतीर्णस्य षोडशसहस्रम ष्टोतर शतं स्त्रीणाम भवन् । इत्यादि से कट जाती है जहाँ श्री कृष्ण की १६१०८ स्त्रियाँ बताई गई हैं और नारी शब्द का नहीं अपितु विष्णु पुराण में स्त्री और भागवत में महिषी (रानी)शब्द का प्रयोग हुआ है। यह उपर्युक्त वर्णन क्या नारियों के साथ आलिंगन चुम्बनादि लीलाओं का वर्णन है ? इस रासलीला पञ्चाध्यायी की समाप्ति पर जो परीक्षित का प्रश्न और शुकदेवजी का उत्तर है उसको उद्धृत करके हम इस अप्रिय किन्तु आवश्यक प्रसंग को समाप्त करना चाहते हैं। परीक्षित् ने रासलीलाका वृत्तांन्त सुन कर शुकदेवजी से प्रश्न किया —

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्यच ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः॥ २७
कथं धर्म सेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम ॥२८
आप्त कामो यदुपतिः कृतवान वै जुगुप्सितम ।
किमभिप्राय एतंनः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥ २९
— स्कन्द० १० ६० ३३

इन श्लोकों काअनुवाद पं० रामतेज कृत निम्न है हे भगवान् जगत्पति भगवान् कृष्ण धर्म की

स्थापना और अधर्म का उच्छेद करने के लिये ही अपने पूर्ण अँश से अवतीर्ण हुये थे। २७ तब फिर धर्म मर्यादा के बक्ता, रचियता और रक्षक होकर भी उन्होंनें पर स्त्री गमन जैसा धर्म विरुद्ध काम किया ? २८

भगवान कृष्ण ने पूर्ण काम होकर भी इस प्रकार का निन्दनीय कार्य किया। इसका आशय मेरीसमझ में नहीं आया। हे सुव्रत, आप हमारा यह सन्देह निवृत्त कीजिये। २६ भागवत दशम स्कन्ध्यानुवाद इस प्रश्न का उत्तर शुकदेवजी ने जो दिया उसका प्रारम्भ यों है: —

धर्म व्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणांच साहसम्
तेजीयसां न दोषाय बह्वे सर्व भुजोयथा ॥ ३०

पं० रामतेज पाण्डेय कृत अनुवाद— श्री शुकदेवजी ने कहा हे राजन् ईश्वर अर्थात समर्थ पुरुषों द्वारा धर्म का उल्लघन और हठ पूर्वक साहसिक कार्य होते देखे जाते हैं किन्तु उनसे उन तेजस्वियों को कोई दोष नहीं होता। जैसे सबका भक्षण करने वाला अग्नि उन पदार्थों के गुण दोष से दूषित नहीं होता। इत्यादि इस उत्तर से यह स्पष्ट है कि श्री शुकदेवजी रास लीलादि को आलंकारिक व आध्यात्मिक नहीं समझते थे अन्यथा वे स्पष्ट उत्तर दे सकते थे कि तुमने मेरा अभिप्राय ही नही समझा। यह तो आध्यात्मिक प्रेम का आलकारिक बर्णन है इत्यादि किन्तु ऐसा उत्तर न देकर उन्होंने कहा कि समर्थ पुरुष धर्म उल्लघन और हठ पूर्वक साहसिक कार्य करदेते है परन्तु

नेनत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः

जो ईश्वर नहीं उन्हें मन से भी ऐसा नही करना चाहिये यह वचन श्रीकृष्णोक्त गीता के वचन से सर्वथा विरुद्ध है जिसमें कहा है कि

यद्यद्। चरितश्रेष्ठ स्तत्तदेवेतरोजनः।
सयत्प्रमाणे कुरुतेलोकेस्तदनुवर्तते ॥

अर्थात् अच्छे आदमी जो करते हैं सामान्य पुरुष भी वैसा ही करते है अतः उनको सबके सम्मुख धर्म का आदर्श रखना चाहिये।

ब्रह्मवैवर्त के राधाकृष्ण सम्भोग विषयक १५ वें अध्याय के श्लोक अश्लील है कि उनके अर्थ सहित उद्धत करना हमे उचित प्रतीत नही होता तथापि २ ३ श्लोकों को बिना अर्थ लिखे नमूने के तौर पर दिया जाता है जिनमें राधा के लिये काम बाण पीड़ित और श्री कृष्ण के लिये काम शास्त्रवित शब्द का प्रयोग करते हुये आलिंगन चुम्बनादि अष्टविध श्रृंगार का विस्तृत वर्णन है—

साददर्श हरे र्वक्त्र चच्छाद व्रीडयामुखम।
पुलकाङ्कित सर्वांगी कामबाण प्रड़िता ॥ १३७
राधाचवित ताम्बूलं ययाचे मधुसूदनः। १४४
करे धृतवा चताकृष्णः स्थापयानास वक्षसि।
चकार शिथिल वस्त्र चुम्बनंच चतुविधम ॥ १४६
प्रतयंगेनैव सतयमम अंगेनाग समालिषम।
सगाराष्ट विध कृष्ण चकार काम शास्त्रवित ॥ १४७
ब्रह्मवैवर्त पुराण अः १५

क्या कोई भी विद्वान इस स्पष्ट ग्राम्यवर्णन को देखकर भी यह कहने का दुस्साहस कर सकता है कि पुराणों में वर्णित राधा कृष्ण प्रेम आध्यात्मिक है उसमें काम वासनाको कोई स्थान नहीं।

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर के कुछ प्रमुख प्रकाशन।

(१) चारों वेद सरल हिन्दी अनुवाद सहितः—सम्पूर्ण १४ जिल्दों में, मूल्य ११२ रु० उत्तम छपाई, सफेद चिकना कागज डबल क्राउन १६ पेजी के सुलभ आकार में,प्रत्येक जिल्द पूरे कपड़े की बँधी हुई सुनहरी अक्षरों सहित है,। सामवेद १ जिल्द ८) रु० यजुर्वेद २ जिल्द १६) रु० अथर्ववेद ४ जिल्द ३२) रु० ऋग्वेद ७) जिल्द ५६)रु०।

(२) महर्षि जीवन चरितः—श्री देवेन्द्रनाथजी द्वारा संग्रहीत व, प० घासीरामजी मेरठ द्वारा अनूदित, दोनों भाग सजिल्द व अनेकों घटना पूर्ण चित्रों से युक्त कवर पर महर्षि का तिरंगा चित्र आर्ट पेपर पर मूल्य ६)५० प्रतिभाग।

(३)क्या वेद में इतिहास है?:—ले० प० जयदेवजी शर्मा विद्यालंकार—युक्तिएवं खोजपूर्ण प्रामाणिक ग्रंथ —मूल्य २।।)रु०

(४)श्री कृष्ण चरितः—श्री ले० भवानीलालजी भारतीय —महाभारत, गीता, उपनिषद्, पुराण तथा अन्य ग्रन्थों का मन्थन करके सिद्ध किया है कि श्री कृष्ण परम योगी, महान राजनीतिज्ञ, वेदशास्त्रों के विद्वान थे। मूल्य सवातीन रुपया।

(५)कर्म मीमांसा:—ले० आचार्य वैद्यनाथजी शास्त्री पुस्तक में नीति के मूलतत्व आपद् धर्म, कर्तव्य और अधिकार, नीति और विधान, नीति आदि पर मौलिक तथा सारगर्भित सामग्री है, नवीन तथा संशोधित संस्करण मूल्य २)

[६] वेदांग प्रकाश के शुद्ध संस्करण:—संधि विषय १)रु० आख्यातिक ४) रु० धातुपाठ ।।≈) वर्णोच्चारण शिक्षा ≈ नामिक ।।।) सौवर ।≈ पारिभाषिक ।।।] गणपाठ ।।≈] अव्ययार्थ ।),कारकीय ।।≈] सामासिक ।।≈) उणादिकोष आदि अन्य भाग भी छप रहे हैं।

[७] दयानन्द वाणी:—भूमिका लेखक पूज्य स्वामी ध्रुवानन्दजी महाराजः--पुस्तक में महर्षि के वचनों व उपदेशों का उत्तमोत्तम ढंग से संग्रहीत किया है टाइप बड़ा कवर दो रंगों का पृष्ठ संख्या २४० मूल्य केवल १।।) रुपया।

[८] दयानन्द वचनामृत:—लेखक महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वतीः—सुललित भाषा में महर्षि के जीवन की अद्भुत झाँकी तथा उनके सुन्दर वचनों के संग्रह के साथ २ कवर पर सुन्दर तिरंगा चित्र मूल्य ६ आना।

(९)भारत वर्षीय आर्य विद्या परिषद की शिक्षा रत्न, विद्या विशारद, विद्यावाचस्पति आदि परीक्षायें मण्डल के तत्वावधान में प्रति वर्ष होती हैं, इन परीक्षाओं की समस्त पुस्तकें अन्य पुस्तक विक्रेताओं के अतिरिक्त हमारे यहां से भी मिलती हैं।

वेद व अन्य आर्ष ग्रन्थो का सूचीपत्र तथा परीक्षाओं की पाठ विधि मुफ्त मंगावें।

शेष पृ० ६ का

कि १६ हजार शरीरकी नस—नाडियोंकोयोग के द्वारा वश किए थे।

उस समय पं० सातवलेकरजी ने मेरे विचार कोई टीका-टिप्पणी नहीं की थी। और सन् १९५२ मे 'आर्यमित्र' में उन्होंने १६ हजार नारियों से कृष्ण का विवाह करवा दिया।

'चरित्रविश्लेषण' मे लेखक ने श्री कृष्णजी सन्ध्या हवन करने का वर्णन महाभारत के आधार किया है जो उचित ही है।

लेखककी शेष सभी बातो से मै सहमत हूं। एक त की उल्लेख करना लेखक महोदय भूल गए है कि ष्णजी वेद मन्त्रो के प्रचारक तथा ऋषि थे। आशाहै आगामी सम्स्करण में जोड़ देंगे।

मासिक पत्र "कल्याण" पौराणिकोंका मासिक है जो गोरखपुर से प्रकाशित होता है। उसके "श्री कृष्ण'अंकवर्ष ६, अगस्त सन् १९३१ ई०, सख्या १, पृष्ठ ३५६. मे यह स्पष्ट लिखा हुआ है —

'श्री कृष्ण ऋग्वेद के आठवे मण्डल के ८५-८७ और दशवें मण्डल के ४२-४३ सूक्तों के ऋषि थे।

पं० परशुराम चतुर्वेदी ने स्पष्ट लिखा है — भीष्म का कहना था कि श्री कृष्ण का सब से अधिक सन्मानित करने के दो कारणों मे से एक यहभी है कि वे वेदों तथा वेदाङ्गों के जानकार है और उन्होंने ऋत्विज होकर यज्ञ भी कराया है। ※ १

—शिवपूजनसिंह 'पथिक'

※ महाभारत, सभापर्व ६८ वॉ अध्याय।

१ "वैष्णव धर्म" पृष्ठ ३३ सन १९५३ ई० मे विवेक प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित प्रथम सस्करण साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद से प्राप्य।

क्षमा याचना

जून मास में राजस्थान आर्य वीर दल के शिक्षण शिविर में व्यस्त रहने और प्रेस की अव्यवस्था के कारण हम आर्षपथ का जून, जुलाई और अगस्त का संयुक्त अंक प्रकाशित कर रहे हैं। इन अंकों की क्षतिपूर्ति करने का प्रयत्न कर सकेंगे ऐसी हमें आशा है।

व्यवस्थापक

साहित्य समालोचना

श्री कृष्ण चरित—ले० श्री० पं० भवानीलाल भारतीय। प्रकाशक आर्य साहित्य मण्डल अजमेर। मूल्य ३ रु० २५न० पै०

योगिराज कृष्ण के सम्बन्ध में राय बांकुमचन्द्र चट्टोपाध्याय की कृष्णचरित्र और पं० चमूपतिजी एम० ए० की "योगेश्वर कृष्ण" ये दो पुस्तकें अच्छी लिखी हुई हैं। इनके पढ़ने से कृष्णजी के विषय में बहुत सी बात ज्ञात होती हैं।

अभी प० भवानीलाल जी भारतीय एम. ए ने "श्री कृष्ण चरित" नामक २६१ पृष्ठ की एक पुस्तक लिखी है जिसकी भूमिका आर्य जगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् प० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड ने लिखी है। यह मार्च सन् १९५८ में प्रथमबार आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर से प्रकाशित हुई है। एक प्रति का मूल्य ३ रु० २५ न० पै० है। छपाई आदि सुन्दर है। यह पुस्तक कैसी है उसका नीर क्षीर विवेक करना है। लेखक आर्य समाजी विचार धारा के हैं इसलिये इसमें पौराणिकता और कल्पना का सर्वथा ही अभाव है। कृष्ण चरित्र पर जो भी लाञ्छन पुराणकार ने लगाया है उनकी भलीभांति आलोचना लेखक ने की है। कृष्ण चरित्र की विकृति में लेखकने यजु० ४०। ८ के मंत्र द्वारा यह सिद्ध किया है कि ईश्वर का अवतार नहीं होता है। वास्तव में यह युक्ति युक्त है इस मंत्र पर महर्षि दयानन्दजी, आद्य श्री शंकराचार्यजी महीधराचार्य प्रभृति ने लगभग एकसा अर्थ किया है

ऋ० ४ ७ १ कृष्ण एम रुशत.........

अथर्व ८। ५। ६ मन्त्र से कृष्ण अवतार की कल्पना पौराणिकों ने की है उसकी समीक्षा इस प्रकरण में अवश्य करनी चाहिए थी।

कृष्ण की ऐतिहासिकता में लेखक ने उन धारणाओं का खण्डन किया है कि श्री कृष्ण कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं हुए। वास्तव में इस प्रकार की कल्पना पाश्चात्य मस्तिष्कों की विकृति है।

कृष्ण चरित्र के मौलिक उपादान में लेखक ने महाभारत के प्रक्षेपों का विवेचन किया है। चार वेद संहिताओं को छोड़कर सभी ग्रन्थों में क्षेपक मिलेंगे जो धूर्तों ने मिश्रण किए हैं।

क्या पुराण विश्वसनीय हैं? में लेखक ने वेदव्यास के नाम से बने हुए कल्पित १८ पुराणों की निःसारता प्रकट की है जो उचित है ब्राह्मण ग्रन्थ ही वास्तव में पुराण हैं। प० माधवाचार्य शास्त्री ने पुराण दिग्दर्शन नामक ग्रन्थ लिखकर पुराणों की अश्लील कथाओं को भी वेदों के सिरपर थोपने का प्रयास किया है, श्री कालूराम शास्त्री ने भी पुराण धर्म, में पुराणों की दोहाई दी है। यदि पौराणिक पण्डित पुराणों की उपेक्षा करेंगे तो उनका पेट कैसे चलेगा। १८ पुराण साम्प्रदायिकों के लिखे हुए हैं।

वंश परम्परा में श्रीकृष्णको यदुवंशी [चन्द्रवंशी] में दिखलाया है जो उचित है। यादव, अहीर, गोप, ग्वाल, जाट, गूजर प्रभृति एक ही श्रेणी के ज्ञात होते हैं। कृष्णजी का गोपों से अधिक सम्बन्ध था नन्दजी को भी गोप ही कहा गया है।

ययाति, नहुष,यदु,तुर्वसु नामों को वेदों में दिखलाना भ्रमपूर्ण है। यह विदेशियों की कल्पना है। लेखकनेइस मत का खण्डन करते हुए वेदों केसभी शब्दों का यौगिकलिखा है जो उचित है।

'बाल्यकाल की घटनायें में पूतनावध, शकटभजन तृणावर्त,यमलार्जुन, दूध, दही का चुराना, आदिघट नाओं परलेखकने युक्तियुक्त विचार किया है। मक्खन चुराने के बारे में लेखक लिखते है बाल्य अवस्था में मक्खन आदि की चोरी की गो उसे नैतिक दृष्टि से अनुचित नही ठराया जासकता'। लेखकके विचार से मैं सहमत हूँ। मनुस्मृते क 'अज्ञाभवतिवभाल": के अनुसार यह उचित है।

वृन्दावन गमनशीर्षक म लेखकन 'कालियदमन की घटनाका महाभारत म न आने क कारण टीका टिप्पणी विशेष नही की है। प० चमूपतिजी न इस पर विचार नही किया है,आचाकम बाबू क विचाराको आपने आलोचना की है।

मेरेविचार से कालियनामक व्यक्ति नाग जाति का था। नाग सर्प नहीं वरन् एक जाति थी जिनकी कन्याओं से आर्य राजाओं ने विवाह किए थे जैसे अर्जुन, तथा श्री राम पुत्र कुश। कालिय यमुना के किनारे रहता था और उप द्रवकरता था उसे कृष्ण जी नेमारा था उस घटनाको उनकी अलोकिकता प्रगटकरने के लिए पुराणकार ने नाग—साप की कल्पना करली है।

अँगुली पर गोवर्द्धन धारण पर लेखक का विचार युक्ति युक्त हैं। वर्षाहोने पर गोवर्द्धनपर्वत की गुफाओं आदि में शरणली यह ठीक है। आपने पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔधकी कविता का प्रमाणभी दिया है।

श्री द्वारका प्रसाद मिश्रने "कृष्णायन" नामक काव्य ग्रन्थ में भी ऐसा ही विचार प्रगट किया है।

गोपी प्रसंग में लेखक का विचार उचित है। पुराणो में गोपियों के साथ कृष्ण की रासलीला आदि का वर्णन उचित नहीं वरन कलङ्क हैं।

राधा शीर्षक मे लेखक का विचार ठीक है कि वह कृष्ण की धर्मपत्नी न थी। पुराण कारोने कलङ्क लगाया है। पुराणों म कही राधा का कृष्णके वामपार्श्व से उत्पति ,कही वृषभानु की कन्या, कही रायाण की स्त्री कहा है।

"बहु विवाह का आरोप और उसकी असत्यता" मे १६००० रानियो से विवाह की घटनाओं की उचित समालोचना करते हुऐ प० श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी के मत का भीउन्होंने खण्डन किया है प० सातवलेकरजी का यह सिद्धान्त तर्क हीन तथा प्रमाण शून्य है कि उन्होंने १६००० स्त्रियों से विवाह किया।

मेरे विचार से श्री कृष्णकीस्त्री केवल रुक्मिणी ही थी। वे योगिराज थेऔर शरीर की १६ हजार नस नाड़ियों को योगबल द्वारा वश किए थे।

मैंनेस्वयं योगिराज श्री कृष्ण के जीवन पर एक दृष्टि शीर्षक लेख जो वैदिकधर्म मासिक पत्र फरवरी १६४८ ई में प० सातवलेकरजी के ही सम्पादन— के पृष्ठ ४२ में यह सिद्ध किया था

[शेष पृ० ६२ व पर]

प्रकाशक चांदमल आर्य मुद्रक -- प्रभा प्रेस , जोधपुर



निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ भर्तृहरि

वर्ष १

अंक ३

परामर्श मण्डल—

[१] पं० धर्मदेव विद्या वाचस्पति, विद्यामार्तण्ड गुरुकुल, कांगड़ी ।

[२] पं० भवानी लाल 'भारतीय' एम. ए. सिद्धान्त वाचस्पति. सदस्य, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ।

[३] पं० शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक' सिद्धान्त वाचस्पति कानपुर ।

वेदसुधा

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास स इन्द्रः ॥ ऋग्वेद २ । १२ । १

व्याख्या — ऐश्वर्य शाली इन्द्र परमात्मा कैसा है ? यह वह प्रश्न है जिसकी जिज्ञासा अनादि काल से मनुष्य को रही है। ऋग्वेद के इस मन्त्र के द्रष्टा ऋषि गृत्समद कहते हैं कि हे मनुष्यों, (जनास) जो प्रारम्भ से ही (यः जातः एव) प्रथम मनस्वी, धीमान (प्रथमः मनस्वान्) था और जो अपने महत् पराक्रम रूप कर्म से (क्रतुना) देवताओं में सर्वश्रेष्ठ बना (पर्यभूषत्)। जिसके महान बल और पराक्रम से (यस्य शुष्मात्) यह समस्त द्यावा पृथिवी और (रोदसी) सम्पूर्ण लोक लोकान्तर कांपते हैं (अभ्यसेताम्) वह प्रभु इन्द्र अपने ऐश्वर्य (नृम्णस्य) के बल से (मह्ना) अपने सर्वोपरि पद पर प्रतिष्ठित है। (सः इन्द्र) इन्हीं विशिष्ट गुणों से युक्त देव इन्द्र हमारा आराध्य और पूज्य है।

संरक्षक—
रावतसिंह चौहान

सम्पादक—
चांदमल आर्य

प्रबन्ध सम्पादक—
विश्वम्भरदयाल एम.ए.
सिद्धान्त वाचस्पति

व्यवस्थापक—
घीसूलाल आर्य

वैशाख सं० २०१६ वि०
श्रीमद्दयानन्दाब्द १३४
मई १९५९ ई०

आर्यपथ कार्यालय
आर्य समाज रातानाडा
जोधपुर (राजस्थान)

वार्षिक मूल्य ३ रुपये
एक प्रति २५ न० पै०

आर्यपथ के नियम–

(१) आर्यपथ प्राचीन वैदिक विचारधारा का प्रचारक और आर्य ऋषियों द्वारा प्रचारित संस्कृति के पुनरुत्थान का पक्षपाती मासिक पत्र है।

(२) यह पत्र प्रतिमास १५ वीं तिथि को प्रकाशित होता है। यदि दिनांक २५ तक न पहुँचे तो तत्काल सूचना देने पर दूसरी प्रति भेजी जा सकती है।

(३) वार्षिक मूल्य ३) रु० धनादेश [मनी आर्डर] द्वारा अग्रिम भेजना चाहिये। वी० पी० मंगवाने में ग्राहक को ५० न० पै० अधिक देने पड़ते हैं।

(४) आर्यपथ का नया वर्ष मार्च [फाल्गुन] से होता है। वर्ष का प्रथम अंक विशेषांक होता है।

(५) आर्यपथ के ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

(६) प्रकाशनार्थ लेख और रचनायें सम्पादक आर्यपथ, आर्यसमाज, रातानाडा, जोधपुर के पते से आने चाहिये। लेख सरल, संक्षिप्त, सारगर्भित और मौलिक हों। सैद्धान्तिक और आर्यसमाज की जीवन्त समस्याओं के सम्बन्ध में आलोचनात्मक और विवेचनात्मक लेखों को प्राथमिकता दी जायेगी लेख स्पष्ट और शुद्ध हों, तथा कागज के एक ओर लिखे हों। उनका प्रकाशित करना या न करना अथवा संशोधित करना सम्पादक के आधीन होगा। अन्यत्र प्रकाशित रचनाओं को स्थान नहीं दिया जायेगा। डाक व्यय प्राप्त होने पर अस्वीकृत रचनायें लौटाई जा सकेंगी।

(७) विज्ञापन के लिये अग्रिम धन का आना आवश्यक है। सम्पूर्ण पृष्ठ के १०) रु० और आधे पृष्ठ के ५) रु०। अश्लील और गर्हित रुचि के विज्ञापन नहीं छापे जायेंगे।

(८) पत्र व्यवहार के समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

(९) पत्र की सामग्री और उसके बाह्य प्रसाधन के सम्बन्ध में पाठकों से सुझाव भेजने की प्रार्थना की जाती है।

(१०) पत्र का नमूना निःशुल्क भेजा जाता है।



श्री विद्यानन्द विदेह और आर्यसमाज में अनुशासन की समस्या

हमारे पाठकों को यह विदित ही होगा कि सार्वदेशिक सभा ने श्री विद्यानन्द विदेह के लिये आर्यसमाज की वेदी बंद करदी है। श्री विद्यानन्द विदेह ने अभी हाल ही में एक विस्तृत वक्तव्य 'अपनों से अपनी बात' शीर्षक प्रकाशित करा कर समस्त आर्यसमाजों को भेजा है। इसका अधिकृत उत्तर जहाँ तक हमें ज्ञात है अभी तक सार्वदेशिक सभा द्वारा नहीं दिया गया, यद्यपि 'सार्वदेशिक' की एक सम्पादकीय टिप्पणी में विदेह जी के उक्त वक्तव्य की आलोचना की गई है। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब कि हमारी शिरोमणि सभा के पदाधिकारी इस वक्तव्य पर अपना निर्णयात्मक मत व्यक्त करेंगे। अस्तु।

विदेह जी के इस वक्तव्य से कई बातें सामने आती हैं। उन्होंने कुछ व्यक्तियों पर यह आरोप लगाया है कि वे उनकी प्रगति और बढती हुई लोकप्रियता को सहन नहीं कर सके, उन्होंने विदेह जी के विरुद्ध वातावरण तैयार किया और ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी, जिसके परिणाम स्वरूप सार्वदेशिक सभा को उनके लिये आर्यसमाज की वेदी बंद करनी पड़ी। विदेह जी के इस कथन में कितनी सत्यता है, हम नहीं कह सकते। परन्तु यह भी निश्चित है कि विदेह जी स्वयं पथ भ्रष्ट हो रहे थे अथवा हो गये थे। धर्मार्य सभा के समक्ष अपनी भूलों को स्वीकार करना यह सिद्ध करता है कि उनके विरुद्ध लगाये गये आरोपों में पर्याप्त सत्यता थी। उन्होंने सार्वदेशिक सभा को यह विश्वास भी दिलाया कि वे अपने ग्रन्थों में आवश्यक संशोधन कर देंगे और जब तक यह नहीं होगा, उनके ग्रन्थों का वितरण बंद रक्खा जायगा।

विदेहजी ने अपने वचन का पालन नहीं किया। धर्मार्यसभा के समक्ष अपनी भूलों को स्वीकार करने के तुरन्त बाद ही वे अफ्रीका चले गये और वहाँ उन्होंने वेद भाष्य के नाम पर पर्याप्त धन संग्रह किया। जब सार्वदेशिक सभा ने उनके लिये समाज की वेदी बंद कर दी तब तो उनमें प्रतिशोधाग्नि तीव्रता से धधक उठी और उनका यथार्थ स्वरूप लोगों के समक्ष आ गया। विदेहजी का अहं बड़ा प्रबल है। वे अपने मुंह से ऋषि दयानन्द का चाहे कितना ही गुणगान क्यों न करें, अपने वेद व्याख्या ग्रन्थों में ऋषि का उल्लेख न करना उनकी नकली ऋषि भक्ति का पर्दाफाश कर देता है और आर्यसमाज के प्रवर्तक के प्रति उनकी घोर कृतघ्नता का सूचक है। आर्य समाज से बहिष्कृत होने के पश्चात् विदेह जी ने अपने मासिक पत्र 'सविता' में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में आर्यसमाज के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा, उससे आर्यसमाज के विरोधियों के ही हाथ मजबूत हो सकते हैं।

इधर अपना वक्तव्य प्रकाशित कराने के पश्चात् उनका रुख कुछ बदला हुआ अवश्य प्रतीत होता हैं।

[म] यह तो नहीं कह सकते कि इस दुर्भाग्य पूर्ण परिस्थिति का अन्त कब और किस प्रकार होगा क्यों कि [इस]में विदेहजी और आर्यसमाज में कुछ मौलिक मतभेद दृष्टिगोचर हो रहा है, परन्तु यहाँ प्रसंगवश हम आर्यसमाज में अनुशासन की समस्या पर कुछ महत्व पूर्ण बाते लिख देना भी आवश्यक समझते है।

विदेहजी के आर्यसमाज से बहिष्कृत कर दिये जाने के पश्चात् भी आर्यसमाजों ने उन्हें अपने यहाँ आमंत्रित किया, उनकी कथाये करवाई और उनको सम्मान दिया। उनके वेदसंस्थान द्वारा संचालित साधना शिविरों में आर्यसमाज के चोटी के नेताओं और विद्वानों ने भाग लिया और सहयोग दिया। फिर उनके लिये आर्यसमाज की वेदी बंद कर देने का क्या अर्थ है ? सार्वदेशिक सभा की नाक के नीचे ही दिल्ली की समाजें विदेहजी को बुलाती हैं और उनका प्रचार करवाती हैं। फिर अनुशासनात्मक कार्यवाही कहाँ गई ? क्या सार्वदेशिक सभा इन तथ्यों से अनभिज्ञ है ? यदि वह जानती है कि उसके निर्णय के उपरान्त भी उसकी आज्ञा की अवहेलना हो रही है तो ऐसा करने वाली आर्यसमाजों पर सभा ने अनुशासनात्मक कार्यवाही क्यों नही की ? सभा निश्चयही अनुशासन का पालन करवाने में असफल रही।

स्पष्ट बात तो यह है कि आज आर्यसमाज में अनुशासन नाम की कोई वस्तु शेष ही नही रह गई है। और अनुशासन का पालन हो भी कैसे ? समाज का संचालन ऐसे लोगों के हाथों में चला गया है जो स्वयं सिद्धान्त हीन, अवसरवादी अर्थ के दास और समाज के गौरव और परम्पराओं से अनभिज्ञ हैं। नीतिकार के शब्दों में अपूज्यों की पूजा और पूज्यों का तिरस्कार जहाँ होगा वहाँ दुर्भिक्ष, मरण और भय के अतिरिक्त और क्या फल हो सकता है ? आर्यसमाज भी आज श्रेष्ठ विद्वानों और कर्मठ सभासदों के अभाव में दुर्भिक्षग्रस्त है, उसके संगठनात्मक विघटन की कल्पना भी की जा सकती है और वह अन्यान्य शक्तियों से भयाक्रान्त तो निश्चय ही है।

जब अनुशासन का पालन ही न हो तो व्यर्थ के घटाटोप से क्या लाभ ? सहयोगी 'सार्वदेशिक' ने अपनी टिप्पणी में लिखा कि विदेहजी आज भी बिजली से अन्त्येष्टि कराने में विश्वास रखते हैं। फिर उन्हें आर्यसमाज में कैसे लिया जा सकता है ? हमारा निवेदन है कि ऐसी छोटी छोटी बातों में मतभेद का विचार किया जाय तब तो आर्यसमाज के किन्हीं दो विद्वानों की परस्पर मेल की पटरी नहीं बैठेगी। उस परिस्थिति में सार्वदेशिक सभा किस किस विद्वान के लिये आर्यसमाज की वेदी बंद करेगी ? सत्य तो यह है कि या तो कोई ऐसी कार्यवाही की ही न जाय जिससे आर्यसमाज की शक्ति का ह्रास हो और हम अपने मित्रों और शुभ चिन्तकों को अपना विरोधी बना बैठे। यदि अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी ही पड़े तो उसका दृढ़ता से पालन किया जाय, और उसमें शिथिलता दिखाने वाले को कड़ा दण्ड दिया जाय।

आर्यसमाज ने अपने विगत जीवन काल में ऐसे अनेक विद्वानों को खोया है जिन्हें तनिक सा मतभेद हो जाने के कारण ही हमने पृथक कर दिया। माना कि इटावा वाले भीमसेन शर्मा और अखिलानन्द स्वार्थवश आर्यसमाज के विरोधी बने परन्तु क्या पं० विश्वबंधु शास्त्री जैसे त्यागी और मनस्वी विद्वानों को खोकर हमने अपनी हानि नहीं की ? यह सत्य है कि सैद्धान्तिक बातों में समझौता नहीं किया जा सकता, परन्तु क्या आज भी हम ऐसे विद्वानों की प्रतिष्ठा नहीं करते और उन्हें प्रश्रय नहीं देते जिनके विचार स्पष्ट ही आर्यसमाज के सैद्धान्तिक दृष्टि कोण से

भिन्न हैं। एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा। बनारस संस्कृत कालेज के भूतपूर्व प्रिन्सिपल डा० मंगल देव शास्त्री आर्यसमाजस्थ गुरुकुलों के उत्सवों पर आयोजित होने वाले सम्मेलनों के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहते हैं परन्तु जिन पाठकों ने उनके द्वारा लिखी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति का विकास: वैदिक धारा' पढ़ी है वे जानते हैं कि वेदों के विषय में शास्त्रीजी के कैसे विचार हैं और आर्यसमाज के दृष्टिकोण से उनका कितना मतभेद है। केवल मतभेद की ही बात नहीं, डा० मंगलदेवजी के विचारानुसार तो आर्यसमाज का वेद के प्रति समग्र दृष्टिकोण ही पूर्वाग्रह युक्त, साम्प्रदायिक और रूढ़िग्रस्त है। ऐसे विचार रखने वाला व्यक्ति भी यदि हमारे द्वारा सम्मान का पात्र हो सकता है तो क्या विदेहजी के विषय में हम अपने निर्णय पर पुनः विचार नहीं कर सकते।

हमारे कथन का यह अभिप्राय नहीं कि सार्वदेशिक सभा विदेहजी के अपराधों के प्रति उपेक्षा दिखलाये और उनकी अहंवादिता तथा उनकी सिद्धान्त विरुद्ध मान्यताओं और क्रियाओं को क्षमा कर दे। निवेदन इतना ही है कि हम यह देखें कि हम जिस अनुशासनात्मक कार्यवाही की घोषणा करते हैं उसका सम्पूर्ण रीत्या पालन भी होता है या नहीं और किसी साधारण मतभेद की आड़ में हम किसी अच्छे व्यक्ति को केवल खो ही नहीं रहे हैं अपितु उसे अपना विरोधी तो नहीं बना रहे हैं?

टिप्पणियाँ –

दलाई लामा की भोजन सूची –

तिब्बतीय बौद्धों के धर्म गुरू और 'जीवित बुद्ध' के प्रतिष्ठा पूर्ण पद पर आसीन दलाई लामा की भोजन सूची जब हमने समाचार पत्रों में पढ़ी, तो उससे आश्चर्य तो कुछ विशेष नहीं हुआ क्योंकि यह तो एक सर्वविदित बात है कि आज के बौद्ध धर्मावलम्बी वे चाहे स्वदेशी हों या विदेशी - घोर मांसाहारी हैं अतः यदि दलाईलामा के भोजन में मांस, मछली अन्डे और मुर्गे का समावेश हो तो आश्चर्य ही क्या? परन्तु फिर भी हम कुछ सोचने के लिये अवश्य विवश हो जाते हैं महात्मा बुद्ध आजीवन अहिंसा, भूतदया और प्राणिमात्र के प्रति मैत्री पूर्ण व्यवहार का उपदेश देते रहे। यद्यपि बौद्ध धर्म में मांसाहार का कोई आग्रह पूर्ण निषेध नहीं है और बुद्ध के जीवनी लेखक तो स्वयं बुद्ध की मृत्यु का कारण भी उनका शूकर मांस का भक्षण ही मानते हैं। फिर भी इतना तो निश्चय है कि अहिंसा को महत्व देने वाले व्यक्तियों का मांसाहारी होना उनकी कथनी और करनी में महद् अन्तर उपस्थित करता है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि बुद्ध तत्कालीन वैदिक यज्ञ प्रणाली के विरोधी केवल इसलिये बने कि उन यज्ञों में प्राणियों की हिंसा होती थी। इस प्राणि हिंसा का कारण थी पुरोहित वर्ग की जिव्हा लोलुपता जिसके वशवर्ती होकर वे यज्ञों में पशुओं को मारते और अपनी रसना को तृप्त करते थे। और यह भी सत्य है कि बुद्ध ने इस रसना लोलुप पुरोहित वर्ग और उनके हिंसा रंजित कर्मकाण्ड के विरुद्ध आवाज उठाई। तो क्या यह सोचना उचित और तर्कपूर्ण नहीं होगा कि यदि बुद्ध मांस लोलुप पुरोहितों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाते हैं तो मांस भक्षण में निश्चय ही उनकी सम्मति नहीं है। अशोक आदि राजाओं का पशु पक्षियों की रक्षा करना और उनके लिये चिकित्सालय खुलवाना इतिहास सिद्ध तथ्य है ऐसी स्थिति में बौद्धों का मांसाहार उनके प्रवर्तक और

हमारी विचारधारा:-

हमारे साप्ताहिक अधिवेशन

लेखक— श्री पं० भवानीलाल 'भारतीय' एम ए.

सामूहिक उपासना (Congregational Worship) जिस रूप में आज हमारे समाज में प्रचलित है, प्राचीन काल में भी वह उसी रूप में प्रचलित रही होगी, यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। निश्चय ही वैदिक धर्मावलम्बी यदाकदा सम्मिलित रूप से यज्ञादि के वृहद आयोजनों द्वारा राष्ट्र और समाज में सामूहिक चेतना का संचार करते रहते थे। उपनिषदों में राजर्षि जनक द्वारा आयोजित यज्ञों और वृहद आध्यात्मिक समारम्भों का विस्तार पूर्वक उल्लेख मिलता है जिनमें सहस्त्रों की संख्या में तत्ववेत्ता ऋषि, महर्षि एकत्रित होकर ब्रह्म विद्या विषयक वार्तालाप करते थे। नैमिषारण्य में अट्ठासी हजार ऋषियों द्वारा सम्मिलित रूप से पुरातन आख्यानों को सुनने की कथा भी इसी ओर संकेत करती है।

परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में हमारे देश ने जिस महान धार्मिक पुनरुत्थान के आन्दोलन को देखा, उसमें कुछ पाश्चात्य प्रभाव भी दृष्टिगोचर हो रहा था। आर्यसमाज का पूर्ववर्ती ब्रह्मसमाज ईसाइयत के अनुकरण पर प्रत्येक शनिवार को सांयकाल ७ से ६ बजे तक अपने साप्ताहिक अधिवेशन लगाता था जिसमें वेदपाठ, वेद व्याख्या के अतिरिक्त आध्यात्मिक प्रवचन और भजन आदि कार्यक्रम भी होते थे। आर्यसमाज के अधिवेशनों में भी यही परिपाटी अपनाई गई जो आजतक किसी न किसी प्रकार चल रही है।

आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों को विधिवत चलाने के लिये आर्य जगत की शिरोमणि सभा - सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक पद्धति का निर्माण किया है। आर्यसमाजों से यह आशा की जाती है कि वे इस पद्धति का पालन करें और ऐसी चेष्टा करें जिससे कि इन साप्ताहिक अधिवेशनों को अधिकाधिक लोकप्रिय , रोचक और उपयोगी बनाया जा सके। परन्तु बहुधा यह देखा गया है कि इन सत्संगों का जितना लाभ आर्यसमाज को मिलना चाहिये उतना मिल नहीं पाता। अधिकांश मे यह कार्यक्रम एक रूढ़िबद्ध प्रणाली पर चलता रहता है।

साधारणतः आर्यसमाजों के साप्ताहिक अधिवेशनों में सामूहिक संध्या, हवन, भजन, कथा, प्रवचन और समाचार सूचनायें आदि के कार्यक्रम रहते हैं। अधिवेशन का कोई समय नियत नहीं रहता। कहीं कार्यक्रम विलम्ब से प्रारम्भ होता है, और कहीं जल्दी कई समाजों में रविवार की सायंकाल को अधिवेशन लगते देखे गये हैं। साप्ताहिक अधिवेशनों में सामूहिक संध्या और हवन प्रायः उपेक्षित से रहते हैं। साधारणतः यह समझा जाता है कि अधिवेशन के आरम्भ में किये जाने वाले यज्ञ का जिम्मा समाज के मंत्री व कुछ यज्ञ प्रेमी , कर्मकाण्डी महानुभावों का है जो सत्संग में ठीक समय पर उपस्थित हो जाते हैं। अन्य सदस्य तो अपनी वैयक्तिक रुचि और सुविधा के अनुसार आते हैं। आर्यसमाजों के अधिवेशनों में किये जाने वाले यज्ञों की प्रणाली में सर्वत्र एकता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। हम आर्यसमाज के कर्मकाण्ड में प्रचलित असंगतियों और असमानताओं पर अपनी

विचारधारा के अन्तर्गत अन्य किसी अंक में प्रकाश डालेंगे . परन्तु यहां इतना लिख देना ही पर्याप्त है कि साप्ताहिक सत्संगों में किये जाने वाले यज्ञों की विधि को एक सूत्र में पिरोकर उसे सर्वत्र समान भाव से प्रचलित करने के निश्चित आदेश देना सार्वदेशिक धर्मार्य सभा का प्रमुख कर्तव्य हो जाता है।

यज्ञ के पश्चात् कुछ सामूहिक भजन बोलने की परिपाटी है। संगीत मानव हृदय को आकृष्ट करने का एक प्रमुख साधन है, परन्तु खेद है कि आर्यसमाज ने संगीत की ओर बहुत कम ध्यान दिया। तभी तो अकसर यह फब्ती सुनने में आती है कि आर्यसमाजी भजनीकों ने संगीत की हत्या कर दी है। साप्ताहिक अधिवेशन में यद्यपि ईश्वर भक्ति के ही भजन बोलने चाहिये, परन्तु कितना ऐसा विषय शेष रह जाता है जिन पर आर्यसमाजी गायक अपने उद्गार प्रकट नहीं करते। भजनों के पश्चात् कथा और प्रवचन की बारी आती है। अकसर ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश तथा अन्यान्य वैदिक, आर्ष ग्रन्थों को कथा करने के लिये चुना जाता है, परन्तु जिस व्यक्ति पर कथा का भार होता है वह प्रायः अपने विषय का पंडित नहीं होता और न विषय की तैयारी करने का कष्ट ही उठाता है। परिणाम यह होता है कि वह कथा के प्रति श्रोताओं की रुचि उत्पन्न करने में असफल हो जाता है।

कथा के पश्चात् उपदेश और प्रवचन होने चाहिये। साधारणतः प्रति सप्ताह कोई उच्च कोटि का विद्वान आकर किसी समाज में प्रवचन करे, यह तो सम्भव नहीं, ऐसी स्थिति में प्रवचन का भार समाज के किसी स्वाध्याय शील सदस्य के जिम्मे पड़ता है। होना तो यह चाहिये कि उपदेश और प्रवचन करने वाला सभासद अपने विषय की पूरी तैयारी करे और अपने वक्तव्य को अधिक से अधिक सरल, रोचक, और बोधगम्य बनाने की चेष्टा करे। परन्तु देखा यह गया है कि आज आर्यसमाजों के अधिवेशनों में उपदेश और प्रवचन के नाम पर जो कुछ वाहियात, ऊट पटांग बातें कही जाती हैं उन्हे सुनकर कोई भी नया व्यक्ति आर्यसमाज की ओर आकृष्ट होना तो दूर रहा, जो रहे सहे व्यक्ति होते हैं वे भी धीरे धीरे सत्संगों में आना कम कर देते हैं।

यह है साप्ताहिक अधिवेशनों का वास्तविक स्वरूप। आर्यसमाज जिस रूढ़िवादिता के विरुद्ध आरम्भ से आन्दोलन करता रहा, आज वह स्वयं भी रूढ़िवाद का शिकार हो रहा है। ऐसी स्थिति में हम क्या करें? हमारे विचार से साप्ताहिक सत्संगों के सुधार और परिष्कार के लिये निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना अत्यावश्यक है —

[१] सत्संग का समय निश्चित रहे। इसके लिये सार्वदेशिक सभा ग्रीष्म और शीत ऋतु के दिन मान को लक्ष्य में रखकर वर्ष भर के लिये दो समय विभाग नियत करे, जिनका प्रत्येक समाज दृढ़ता से पालन करे।

[२] यज्ञारम्भ से पूर्व सामूहिक संध्या हो, जिसमें समस्त सदस्य अनिवार्य रूप से उपस्थित रहें यज्ञ का भार मन्त्री और दो चार अन्य लोगों पर ही नहीं छोड़ दिया जाय। यह भी हो सकता है कि मन्त्री प्रति सप्ताह के लिये चार सभासदों को सपत्नीक यज्ञ में बैठने के लिये आहूत करे। इसका यह लाभ होगा कि समाज का प्रत्येक सदस्य यज्ञ विधि सीख जायेगा। समाज का पुरोहित या कोई अन्य स्वाध्यायशील विद्वान यज्ञ का ब्रह्मा माना जाय और उसकी आज्ञा का कठोरता

से पालन किया जाय। यज्ञ की सामग्री और अन्य उपकरणों तथा यज्ञ वेदी की स्वच्छता का भार सेवक को सौंपकर निश्चित हो जाना मंत्री के अनुत्तरदायित्व का सूचक है।

[३] यज्ञ के पश्चात् ईश्वर भक्ति के एक या दो भजन हों। ऐसे भजन सामूहिक रूप से भी गाये जा सकते हैं। अमीचन्द, नारायण प्रसाद बेताब, वासुदेव, नाथूराम शंकर, प्रकाशचन्द्र कविरत्न आदि के भजन उच्च कोटि के हैं जिनका सामान्यतया उपयोग किया जाना चाहिये। सामूहिक रूप से गाये जाने वाले भजनों के अतिरिक्त जो भजन गाये जाँय उनके लिये वाद्यों का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु यह ध्यान रक्खा जाय कि संगीत के माधुर्य व स्वारस्य की कहीं भी हत्या न हो। सत्संगों में खण्डनात्मक और राजनैतिक विवादपूर्ण पद्यों के लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिये।

[४] जिस पुस्तक की कथा की जाय, उसका प्रसंग पूर्व से ही श्रोताओं को ज्ञात होना चाहिये। कथा करने वाला अपने विषय की पूरी तैयारी सप्ताह भर करे। कथा के समय हर सदस्य के पास उस ग्रन्थ की एक एक प्रति का होना अधिक लाभप्रद हो सकता है। जिस प्रकार गिरजे की ओर प्रयाण करते समय एक ईसाई बाइबिल लेना नहीं भूलता, इसी प्रकार कोई आर्य सत्यार्थप्रकाश के बिना समाज मन्दिर में क्यों प्रवेश करे?

[५] यथा सम्भव वेद मन्त्रों के आधार पर ही प्रवचन और उपदेश हों। उपदेशों में विषयान्तर करना, अनावश्यक दृष्टान्त देने लगना अथवा सामयिक राजनैतिक आन्दोलनों की अनावश्यक चर्चा और आलोचना करने लगना उपदेश के महत्व को नष्ट कर देता है। आर्यसमाज की वेदी की पवित्रता की रक्षा करना प्रत्येक आर्य सभासद का कर्तव्य है। आर्यसमाजों के साप्ताहिक अधिवेशनों को व्यर्थ के वाद्विवाद और पार्टी के अखाड़े बनने से बचाना आवश्यक है।

[६] अधिवेशन में सम्मिलित होने वाले प्रत्येक आर्य सभासद की उपस्थिति को अंकित करने के लिये एक रजिस्टर रहना चाहिये।

[७] समाज के अधिकारी साप्ताहिक अधिवेशन की सफलता के लिये विशेष प्रयत्नशील हों। वे सभासदों को सपरिवार सम्मिलित होने के लिये प्रेरित करें और स्वयं उसके लिये उदाहरण स्वरूप बनें।

[८] आर्यसमाज उपासना मन्दिर हैं। अतः उनकी पवित्रता और मर्यादा की रक्षा करना अत्यावश्यक है। जिन समाजों में कन्या पाठशालायें तथा अन्य शिक्षण संस्थायें चलती हैं, उनमें मन्दिरों की पवित्रता और भव्यता नहीं रहती। फलस्वरूप वहाँ का वातावरण आध्यात्मिक भावों के उद्रेक करने में असफल रह जाता है। यही कारण है कि आर्यसमाज शुष्क, नीरस, तर्कवादियों के संगठन के रूप में कुख्यात हो रहा है। उसमें भक्ति और उपासना के दिव्य भावों का अभाव हो गया है।

क्या हम यह आशा करें कि आर्यसमाजों के अधिकारी गण इस ओर ध्यान देकर अपने साप्ताहिक सत्संगों को यथार्थ में उपयोगी बना सकेंगे?

शेष पृष्ठ ३७ का

पूर्व पुरुषाओं से कोई बहुत अधिक श्लाघनीय वस्तु नहीं है और वैदिक यज्ञों का उनके द्वारा यह कह कर विरोध किया जाना कि वे लोगों की मांस लोलुप प्रवृत्ति के कारण उद्भूत हैं वैसा ही है जैसा स्वयं शीशे के मकान में बैठ कर दूसरों पर पत्थर फेंकना।

स्वाध्याय का पृष्ठ –

सनत्कुमार का नारद के प्रति उपदेश

(ले० श्री भवानी लाल 'भारतीय' एम० ए०)

उपदेश की इच्छा से महर्षि नारद भगवान् सनत्कुमार के समीप गये और बोले, "भगवान् मुझे उपदेश प्रदान करें।" सनत्कुमार ने उनकी पात्रता जानने के लिये उनसे पूछा - तुम जो कुछ जानते हो, वह मुझे बतलाओ, ताकि मैं उसके आगे की बात बता सकूं। उत्तर में महर्षि नारद ने जिन विद्याओं के नाम बताये, उनकी लम्बी सूची यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि प्राचीन उपनिषद् कालीन ऋषियों का ज्ञान कितना विस्तृत था। विभिन्न प्रकार की भौतिक और आध्यात्मिक विद्याओं को आत्मसात् कर लेने के पश्चात् भी उनकी ज्ञान पिपासा चरम तत्व का साक्षात्कार न कर लेने तक शान्त नहीं होती थी।

नारद ने कहा, महाराज मैं चारों वेदों के अतिरिक्त इतिहास, पुराण, व्याकरण, श्राद्ध कल्प, गणित, खगोल उत्पात ज्ञान, तर्क शास्त्र, नीति शास्त्र निरुक्त, ब्रह्म विद्या अर्थात् वेदांग ज्ञान, भूतविद्या, क्षत्र विद्या, धनुर्वेद, नक्षत्र विद्या, ज्योतिष् सर्प विद्या, और नृत्य, गान, वाद्य और शिल्पादि विज्ञान जानता हूँ। ज्ञान राशि के वृहद् कोशों के सदृश इन विभिन्न विद्याओं के जानने के उपरान्त भी नारद को सन्तोष नहीं हैं। उसने कहा, "भगवन् मैं केवल मंत्र वेत्ता ही हूँ। आत्म वेत्ता नहीं। मैने आप जैसों से सुना है कि आत्म वेत्ता शोक को पार कर लेता है। अतः मैं आपसे उस उपाय को जानना चाहता हूँ जिससे मनुष्य शोक सागर से पार हो जाय।

नारद की बहुज्ञता को जानते हुये भी सनत्कुमार समझ गये कि ये सब शास्त्र अपरा विद्या के ही अन्तर्गत आते हैं। परा विद्या वह है जिससे अक्षर, ब्रह्म का ज्ञान होता है। अब तक नारद ने केवल नाम को ही जाना है। नाम को जानने का तात्पर्य है केवल पुस्तकीय ज्ञान शाब्दिक-ज्ञान। यहाँ से ही सनत्कुमार का उपदेश प्रारम्भ हो जाता है। नाम से आगे जो क्रम चलता है उसमें वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्राण, चौदह तत्व आते हैं। इस प्रकार प्राण के आधार भूत आत्म तत्व की प्रतीति कराने के पश्चात् सनत्कुमार ने सत्य, विज्ञान, मति श्रद्धा, निष्ठा, कृति और सुख को जानने योग्य बताया। यह शाश्वत सुख भूमा रूप परमात्मा में स्थित है

"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति"

निश्चय जो भूमा है वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है। भूमा ही सुख है। भूमा की ही जिज्ञासा करनी चाहिये।

उस भूमा रूप परमात्मा को जानने के पश्चात् कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। भूमा अमृत है और जो अल्प है वह मर्त्य है। नारद ने पूछा; "भगवन् यह भूमा किसमें प्रतिष्ठित हैं?" सनत्कुमार बोले, "परमात्मा स्व महिमा में ही प्रतिष्ठित है।

शेष पृष्ठ ३४ पर

ईश्वर : एक दार्शनिक विवेचन

[ले० श्री पन्ना लाल परिहार बी० ए० एल० एल० बी०, जोधपुर]

विश्व में एक सर्व नियन्ता गूढ़ और व्यापक सच्चिदानन्द सत्ता है। परन्तु सूक्ष्म होने पर दिखती नहीं। फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता। ॥ वेद का उपदेश है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यते अयनाय ॥

अर्थात् विश्व में व्यापक पुरुष विशेष महान शक्ति को मैं जानता हूँ जो दिव्य प्रकाश रूप और अन्धकार प्रकृति से परे सूक्ष्म है। उसी परम पुरुष को जान कर प्राणी मृत्यु या जन्म मरण के बन्धन से पार हो जाता है। मुक्ति का मार्ग इसके सिवाय कोई नहीं है।

क्या यह सत्ता सिद्ध या प्रमाणित हो सकती है ? सांख्य दर्शन ने लिखा है कि ईश्वरा सिद्धेः। ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता। इस वाक्य से कई लोग सांख्य को अनीश्वरवादी या नास्तिक बताते हैं। परन्तु यह भ्रम है। कपिल का अभिप्राय यह है कि साधारण प्रमाण और साधनों से ईश्वर असिद्ध है। क्योंकि परमेश्वर आत्म ज्ञान का विषय है। यह योग द्वारा जाना जाता है। साधारणतया वस्तु की सिद्धि लक्षण और प्रमाण से होती है। प्रमाण तो एक वृत्ति है। वृत्ति मन का व्यापार है। मन व बुद्धि से परे सूक्ष्म सत्ता है परमात्मा। अतः बुद्धि की पकड़ और पहुँच से परे है भगवान। पतंजलि ने ईश्वर का लक्षण दिया है- जो क्लेश, कर्म विपाक (कर्म फल) और आशय (हृदय या मन चतुष्टय) से सूक्ष्म, अछूता पुरुष विशेष है, वह ईश्वर है। इस प्रकार परमेश्वर इन्द्रियों से परे और मन और बुद्धि से सूक्ष्म है। परमात्मा आत्मा के अनुभव का विषय है अनुमान और शब्द प्रमाण से हम अपने को पिता का पुत्र मानते हैं। देखा किसने।

परमात्मा के प्रमाण में प्रत्यक्ष, उपमान और शब्द प्रमाण भी सन्तोषप्रद नहीं होते। अनुमान में प्रमाण से काम लिया जाता है। लिंग या लक्षण के ज्ञान से लिंगी का ज्ञान करना अनुमान है। जहां पर धूंआ है वहां अग्नि है। अनुमान तीन प्रकार का होता है। पूर्ववत अर्थात् कारण से कार्य जानना। शेषवत अर्थात् कार्य से कारण जानना और सामान्य शेषवत अनुमान से परमात्मा को जानो। सृष्टि है तो स्रष्टा भी है।

अनुमान के अन्तर्गत चार प्रकार की युक्तियां दी जाती हैं। (१) एक सृष्टि रचना सम्बन्धी [cosmological]

(२) कारण और उद्देश्य सम्बन्धी (teleological)

(३) कर्म, फल, पाप पुण्य सम्बन्धी (moral)

[४] अस्तित्व और आधार आधेय सम्बन्धी (ontological)

कारण और कार्य का नियम सर्वत्र काम कर रहा है। सृष्टि में चेतनता भी है। उसका उद्देश्य है जो चेतन सत्ता का पता देता है। बिना चेतन के ज्ञान आया कहां से। ज्ञान का आदि स्रोत है जहां से विकास होता है। कर्मवाद में पाप पुण्य के फल दुख सुख मिलते हैं। पाप करके भी कोई दुख नहीं चाहता। न्याय नियम से यथावत फलदाता कोई है। कर्म जड़ है और चेतन के आश्रित है। कर्म जड़

स्वयं फल नहीं दे सकता। विश्व का आधार भी कोई है। निराधार कोई वस्तु ठहर नहीं सकती। ज्ञान का क्रमशः विकास केवल अनुभव के आधार पर होना संभव नहीं। सृष्टि से पूर्व ज्ञान का दाता होना चाहिये।

अनुमान की युक्ति बुद्धिवाद का विषय है। इससे किसी हद तक सन्तोष होता है। प्रथम आत्मा को जानो। आत्मा की अमरता स्वयं सिद्ध है। मैं सोचता हूँ। इसलिये कोई विचारक भी विद्यमान अवश्य है। अभाव से भाव नहीं बनता। इसलिये मेरा अस्तित्व जो वर्तमान में है वह पहले भी था और भविष्य में भी रहेगा। यह है आत्मा का अस्तित्व और अमरपन। कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकता। अब इसी युक्ति को आगे बढ़ावो। शरीर में जैसे आत्मा है, वैसे ही विश्वात्मा होना चाहिये।

विश्व में प्रत्येक विज्ञान विभाग में असंख्य अटल नियम कार्य कर रहे हैं। सूर्य का उदय और अस्त होना, ताराओं की गति, ऋतु परिवर्तन आदि में कहीं त्रुटि नही है। नियमों के पीछे एक योजना है, उद्देश्य है जो छुपा हुआ है। योजना बिना चेतन और ज्ञान सत्ता के संभव नहीं। जड़ पदार्थों में योजना बनाने की शक्ति नही है। जड़ में चेतनता और ज्ञान कहां से आया। दो पदार्थों के मेल का परिणाम चेतन ज्ञान नहीं हो सकता। यदि ऐसा मानो तो जिन पदार्थों से कोई वस्तु बनी है, उनमें भी गुप्त रूप से चेतनता विद्यमान थी। अन्यथा अभाव से भाव कैसे हो गया।

विश्व में सर्वत्र अटल नियमों का जाल बिछा हुआ है। विज्ञान के प्रत्येक विभाग में नियम काम कर रहे हैं। कार्य का कारण अवश्य होता है। प्रत्येक वस्तु में गति हो रही है। गति का स्रोत अवश्य है। नियम है तो नियामक भी है। सृष्टि एक महान प्रबन्ध है। प्रबन्धक भी है। इस मिल्कियत का मालिक भी है। लावारिस नही है। संसार के पदार्थ अवयव से बने हैं। बनाने वाला भी है। अवयव स्वयं नहीं जुड़ जाते। उपादान कारण (Material cause) के साथ निमित्त कारण (Efficient cause) भी है। घड़ा है तो मिट्टी भी है और कुम्हार भी। स्वभाव से ही कोई वस्तु बनती नहीं। स्वभाव का अर्थ है स्वस्य भाव (Inherent Quality) जो किसी पदार्थ में सदा रहता हैं। यदि सृष्टि का स्वभाव बनने का है तो बनती ही चली जायगी। बिगड़ेगी नहीं। यदि सृष्टि का स्वभाव बिगड़ने का मानो तो वह बिगड़ती ही चली जायगी। और यदि इसका स्वभाव बनना और बिगड़ना दोनों है तो क्षण क्षण में वह बनती बिगड़ती रहेगी। उसमें स्थिरता नहीं हो सकती। यदि यह मानों कि नियत समय पर ऐसा होना स्वभाव है तो यह ज्ञानपूर्वक योजना का फल है जो पदार्थ में नही। अतः स्वभाव वाद ठीक नही है।

तब प्रश्न उठता है कि क्या सृष्टि अकस्मात (Chance) से बन गई है। ऐसा भी संभव नही। वर्णमाला के अक्षरों को वर्षों तक उछालते रहो। फिर भी कोई शब्द स्वतः नहीं बनते न पुस्तक रची जा सकती। चेतन और ज्ञान पूर्वक सत्ता अक्षरों को लिखकर ग्रन्थ रचती हैं सृष्टि के परमाणु भी किसी चेतन ज्ञानी सत्ता के आधार से कार्य कर रही है जड़ परमाणुओं में चेतनता और ज्ञान कहां हैं।

यह विश्व मानों एक जीवित माता का उदर है। यदि माता मर जावे तो उदरस्थ बच्चा कैसे जीता रह सकता है

लोग कहते हैं कि घड़ी तो है परन्तु घड़ी साज नजर नहीं आता। इसलिये घड़ी का बनाने वाला नहीं है। हलुआ सामने है। उसमें घी, शक्कर, मैदा, पानी सब है। परन्तु मिलाने वाला हलवाई कहां है, उसे हलवे में दिखाओ। अनुमान लगाने का कहते हैं तो वे प्रत्यक्ष प्रमाण का आग्रह करते हैं। आत्मा का अनुभव और अभ्यास का कहते हैं तो वे इस पचड़े में नहीं पड़ते। वे कहते हैं कि जैसे नदी का बनाने वाला कोई नहीं है तो सूर्य का बनाने वाला कैसे माने ? यह युक्ति उनकी भ्रमात्मक है। सिद्ध कोटि से चल कर साध्य कोटि की वस्तु सिद्ध की जाती है। नदी और सूर्य दोनों ही साध्य कोटि में हैं। सही ? उदाहरण यह है कि जैसे ताजमहल का बनाने वाला था तो कमल जो सृष्टि है उसका स्रष्टा भी है।

क्या आत्मा और ईश्वर प्रत्यक्ष हो सकता है। उत्तर है योग साधन द्वारा आत्मा से परमात्मा को जानो। इसका अष्टांग योग का क्रम निर्धारित है। अभ्यास और वैराग्य से आगे बढ़ो तो परमात्मा का प्रत्यक्ष या साक्षात्कार होगा। अन्त: करण (हृदय) की गांठ खोलो। चित्त की स्थिरता करो। वृत्तियों का निरोध करो तो आत्मा का प्रकाश अनुभव होगा। अन्यथा चित्त वृत्तियों की समानता ही सृष्टि का स्वरूप है।

ईश्वर का कर्ता कोई नहीं। कर्ता का कर्ता नही होता। ईश्वर चल और अचल दोनों है। चुम्बक अचल है परन्तु लोहे को चलाता है ईश्वर अशरीरी है फिर भी अपने स्वभाविक ज्ञान बल से सृष्टा है। माता अपने उदर में बच्चे के हाथ पैर नहीं बनाती। वे स्वयं बनते हैं नियम से। ईश्वर सृष्टि का रचयिता है. निमित्त कारण है। वह उपादान नहीं है, उपादान कारण नहीं है। प्रकृति उपादना कारण है। जीव सान्त है फिर भी योग और आत्म दर्शन द्वारा अनन्त परमेश्वर की थाह ? ले सकता है। माता पिता ने हमें नहीं बनाया। वे तो पार्थिव शरीर के निमित्त कारण हैं। सृष्टि में जो अटल नियम काम कर रहे हैं उनमें कोई त्रुटि नहीं है, अपवाद नही है। अपवाद और त्रुटि का भान हमारी एकांगी सीमित ज्ञान की दृष्टि है। सर्वज्ञ की दृष्टि में सब कुछ ठीक है। यदि कोई ईश्वर को नहीं मानता है तो उससे भगवान पर कोई असर नहीं। वह व्यक्तिगत हानि उठाता है। परमात्मा सर्व सुखों की खान और दिव्यप्रकाश पुंज है। यदि कोई सर्वोच्चसत्ता का आश्रय नहीं लेता, गुणों को धारण नहीं करता और प्रकाश से दूर रहना चाहता है तो यह उसी की हानि है। उपासना करना अपनी ही भलाई करना है इसमें हमारा ही स्वार्थ है। यह परमेश्वर की प्रशंसा या खुशामद नहीं है। भगवान किसी से खुश और नाराज नही होता।

प्रश्न उठता है कि ईश्वर को क्यो माने ? उत्तर है कि आनन्द प्राप्ति के लिये परमात्मा की उपासना करो। सत चित से सच्चिदानन्द बनो। प्रभु के सम्पर्क से आनन्द होगा और सुख दुख का द्वन्द्व मिटेगा और जन्म मरण के चक्र से छूट जावोगे। उपासना से शुभ कर्म में प्रवृत्ति होती है। ईश्वर के न्याय नियम के भय के कारण वृथा

अभिमान दूर रहते हैं। जीवन में एक उच्च आदर्श भी होना चाहिये। परमात्मा हमारा आदर्श है, ध्येय है, उसकी प्राप्ति ही मोक्ष है, परमानन्द है, उपासना से चित्त शुद्धि होती है। आत्मिक बल बढ़ता है। हममें नम्रता और उत्साह आते हैं। विश्व में हमारे सुख साधन जिसने जुटाये हैं, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना भी उपासना है। जो प्रभु भक्त है, वह जनता को भी प्रेम करता है।

केवल कर्तव्य पालन से जीवन अधूरा है। यह एक पहिये की गाड़ी होगी। कर्म के साथ ब्रह्म ज्ञान भी जरूरी है। विद्या और अविद्या दोनों को साथ साथ जानो। केवल कर्म करना बिना उद्देश्य की यात्रा है।

प्रश्न है कि यदि कर्तव्य कर्म ही करते रहें तो ईश्वर विश्वास और उपासना की क्या आवश्यकता है। निष्काम कर्म द्वारा ही हमें मोक्ष मिल जायगा। उत्तर है कि अविद्या (कर्म) और विद्या दोनों को साथ साथ जानो। अविद्या से मृत्यु (दुख) से तर जावोगे। परन्तु विद्या [ब्रह्म ज्ञान] द्वारा अमृत [मोक्ष] का भोग करोगे। (यजु- ४०) ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। ज्ञान ही मुक्ति है। वही मुक्ति का स्वरूप है। हृदय ग्रन्थि के विच्छेद होने पर कर्म का क्षय होता है। कर्म हम अपने अन्तः करण के अनुसार करते है। परन्तु जीव अल्पज्ञ और सान्त है। वह भूल कर सकता है। उससे सत्य मार्ग और उद्देश्य प्रदर्शक उच्च शक्ति का सहारा लेना जरूरी है। उपासना मानो हमारे अन्तः करण का साबुन है। इससे चित्त शुद्धि होती रहती है और दिव्य प्रकाश मिलता रहता है। केवल कर्म करना एकांगी यात्रा है। वह बिना लक्ष्य का काम है। कर्म तो साधन है। ज्ञान साध्य है।

बिना साध्य (लक्ष्य) के केवल साधन (कर्तव्य कर्म) से मानो अंधेरे में टटोलना है। यात्री को भटकने जाने की संभावना है।

कर्म से तो दुख से छुटकारा होता है। वह स्वर्ग का मार्ग है। परन्तु मुक्ति का मार्ग तो ज्ञान है जो उपासना से आता है। केवल कर्म क्षेत्र में विचरने से मिथ्याभिमान होता है जिससे अत्याचार, अनाचार की संभावना है क्योंकि मनुष्य अपने से अन्य उच्च सत्ता को मानता ही नहीं उच्च सत्ता परमेश्वर को मानने और उसकी उपासना से कर्म में उत्साह होता है। गीता में भी कर्म योग को सरल साधन माना है परन्तु सांख्य योग को श्रेष्ठ बताया है। सर्वज्ञ, सर्व शक्ति से सम्पर्क से अल्पज्ञ आत्मा को दीप्त करते रहो। यही भक्ति है। इसमें ईश्वर का कोई स्वार्थ नही। हमारी ही भलाई है। निष्काम कर्म से तो संचित कर्मों का क्षय होता और नवीन कर्म नहीं जुड़ते। यह मार्ग नकारात्मक है। आनन्द मिलना तो ब्रह्म ज्ञान द्वारा ही होता है। कर्म तो यज्ञ रूप है जिससे स्वर्ग सुख मिलता है। मोक्ष तो ज्ञान से मिलेगा। कर्म से मनोवृत्ति होती है। इस वृति के निरोध बिना आत्म दर्शन का आनन्द नहीं हो सकता। जिस प्रभु ने हमें सब कुछ दिया है उसके लिये कृतज्ञता प्रकाश करना भी उपासना है। यह हमारा धर्म है यद्यपि इससे परमात्मा की प्रशंसा का प्रश्न नहीं है। अतः यजु० ४० में कहा है—

विद्यां च अविद्यां च यस्तद् वेदो भयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया मृतं मश्नुते।

शेष पृ० ४८ पर देखिये

सैद्धान्तिक चर्चा-

" सत्यार्थ प्रकाश भाष्य--चतुर्थ समुल्लास "

लेखक — [वैदिक गवेषक श्री पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा ' पथिक ' बी० ए० सिद्धान्तवाचस्पति ।]

गतांक से आगे

"सोलहवें वर्ष से ले के चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से ले के अड़तीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है ।"

भाष्यः- मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिये हमारे ऋषियों ने सोलह संस्कार निर्माण किये हैं। इनमें विवाह संस्कार अत्यन्त विचारणीय संस्कार है। विवाह के मुख्यतः दो उद्देश्य माने जाते है — [१] दाम्पत्य प्रेम , [२] सन्तानोत्पत्ति। इन दोनों में प्रथम ही मुख्य है । यह दाम्पत्य प्रेम जो विवाह का सर्वोच्च उद्देश्य और गार्हस्थ्य जीवन का सर्वस्व है स्त्री - पुरुषों में कब उत्पन्न होता है ? आइये पाठक—वृन्द इस पर विचार करें ।

बड़े बड़े मनीषियों के विचार हैं कि वैदिक काल में कन्याओं के विवाह प्रौढ़ावस्था में होते थे जिससे सहज ही दाम्पत्य प्रेम उत्पन्न होता था । जब से समाज में बाल विवाह रूपी कोढ़ ने प्रवेश किया है तबसे समाज का अधःपतन हो रहा है और गार्हस्थ्य जीवन नारकीय दृश्य हो रहा है । अब भी यदि कन्याओं का विवाह प्रौढ़ावस्था में हो तो गार्हस्थ्य जीवन सुखमय हो जायेगा ।

अब प्रौढ़ावस्था के विवाह का प्रमाण वेद , गृह्यसूत्र तथा विद्वानों के विचारों से प्रदर्शित किया जाता है ।

आर्षप्रमाण — " ब्रह्मचर्येण कन्याऽऽयुवानं विन्दते पतिम् " [अथर्व० कां० ११ सू० ५ , मं० १८]

महर्षि दयानन्दजी भाष्य — " जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती , विदुषी , अपने अनुकूल प्रिय सदृश्य स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे [कन्या] कुमारी [ब्रह्मचर्येण] ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश्य प्रिय विद्वान (युवानम्) पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे । इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये । " ३

चतुर्वेदभाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार , मीमांसातीर्थ — "(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के पालन से (कन्या) कन्या (युवानं पतिम् विन्दते) युवापति को प्राप्त करती है । " ४

सिद्धान्त-मर्मज्ञ, विद्याभूषण पं० सुरेन्द्र शर्मा गौड़ वेद-काव्यतीर्थ , साहित्योपाध्याय — "ब्रह्मचर्य पूर्वक युवती कन्या ब्रह्मचारी युवा पुरुष को पति चुने । " ५

कतिपय पौराणिक पण्डित इस मंत्र के "ब्रह्मचर्येण " पद को 'युवानं' के साथ जोड़ते हुये यह अर्थ करने का प्रयास करते हैं कि " कन्या ब्रह्मचर्य

३. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास ।

४. अथर्ववेद संहिता भाषाभाष्य , द्वितीयावृत्ति , पृष्ठ २३२-२३३

५. साप्ताहिक 'आर्य-मित्र' वर्ष ४१, सितम्बर १ , सन् १९३८ ई० ।

से युवक पति को प्राप्त करती है। कन्या का अर्थ भी वे "दस वर्षा भवेत् गौरी...." आदि कल्पित श्लोकों के आधार पर १० वर्ष की बालिका का करते हैं फिर उसके लिए वेदाध्ययन की आज्ञा ही कैसे हो सकती है।

किन्तु श्री सायणाचार्य जी के भाष्य (जिसे सभी पौराणिक पण्डित मानते हैं) से इन कल्पित अर्थों की निवृत्ति स्वयं हो जाती है।

श्री सायणभाष्य — "अत्रापि ब्रह्मचर्यं प्रशस्यते (कन्या) अकृत विवाहा स्त्री ब्रह्मचर्यं चरन्ती तेन ब्रह्मचर्येण (युवानम्) युवत्व गुणोपेतम् उत्कृष्टं [पतिम्] [विन्दते] लभते।"

अर्थात् — "यहाँ ब्रह्मचर्य की प्रशंसा है। कन्या ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करती हुई उसके द्वारा युवक उत्तम पति को प्राप्त करती है।"

यहाँ पर श्री सायण ने **कन्या का अर्थ** १० वर्ष की बालिका न करते हुए 'अविवाहा स्त्री' ऐसा किया है और 'ब्रह्मचर्यं चरन्ति' इन शब्दों को लिखते हुए उस अनर्थ का परिहार कर दिया है जो 'ब्रह्मचर्येण' को 'युवानम्' के साथ जोड़ने का व्यर्थ और अप्रासंगिक यत्न किया जाता है।

ऋग्वेद ३।३३।१० के भाष्य में श्री सायण ने 'कन्या' का अर्थ 'युवतीः' ऐसा किया है। ऋग्वेद १०।१०७।१० के भाष्य में भी "अभिनव यौवना" यह 'कन्या' का अर्थ किया है। "विन्दते" पद का अर्थ श्री कुल्लूक भट्ट ने मनुस्मृति ६।६० की टीका में 'स्वयं वृणीत' अर्थात् स्वयं चुनाव करे, यह किया है।

यहाँ जिस 'ब्रह्मचर्य' शब्द का प्रयोग है उसकी व्याख्या श्री सायणाचार्य ने इसी सूक्त, अध्याय ११।७ के अनेक मंत्रों में इस प्रकार की है "ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति"।

अध्याय ११।७।१७ की व्याख्या में वे लिखते हैं :—

"ब्रह्मचर्येण— ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थमाचर्यम् आचरणीयं समिदाधान भैक्ष्यचर्योर्ध्वरेतस्कत्वादिकं ब्रह्मचारिभिरनुष्ठीयमानं कर्म ब्रह्मचर्यम् तेन"।

अर्थात् — ब्रह्म का अर्थ वेद है उसके अध्ययन के लिये जो भी ब्रह्मचारियों द्वारा किये जाते हैं वे ब्रह्मचर्य शब्द में आते हैं।

इस सूक्त के प्रथम ही मंत्र में जो ब्रह्मचारी शब्द आया है उसकी व्याख्या में श्री सायणाचार्य लिखते है :- "ब्रह्मणि-वेदात्मकेऽध्येतव्ये चरितुं शीलमस्य स तथोक्तः"।

अर्थात्— ब्रह्मचारी वह है जो वेद के अध्ययन में विशेषरूप से तत्पर है। ब्रह्म का अर्थ वेद होता है और चर्य में जो चर धातु है उसके अर्थ गति अर्थात् ज्ञान, गमन, प्राप्ति और भक्षण हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का मुख्य शब्दार्थ वेद का ज्ञान प्राप्त करना सिद्ध होता है।

श्री शंकराचार्य ने "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्" - इस कठोपनिषत् के वचन की व्याख्या में 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ "गुरुकुलवास-लक्षणम् अन्यद् वा ब्रह्मप्राप्त्यर्थम्" ऐसा किया है अर्थात् गुरुकुल में वास अथवा ब्रह्म-परमात्मा और वेद की प्राप्ति के लिए जो कार्य किया जाय ऐसा किया है।